॥ श्रीहरिः ॥

काल-मीमांसा

धर्मसम्राट् स्वामीश्री करपात्रीजी महाराज

प्रकाशक : वेदशास्त्रानुसन्धान केन्द्र, वाराणसी

।। श्रीहरिः ।।

काल-मीमांसा

•

धर्मसम्राट् स्वामीश्री करपात्रीजी महाराज

।। श्रीहरिः।।

वेदशास्त्रादि तथा तदाधारित भारतीय सनातन संस्कृति एवं ऐतिहासिक तथ्यों के बारे में अधिकतर आधुनिक इतिहास लेखकों के विचार पाश्चात्य मान्यताओं से प्रभावित होने के कारण आस्तिकजनों के मस्तिष्क में अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ उत्पन्न करते हैं। ऐसी स्थिति में, प्रस्तुत ग्रन्थ में पूज्यपाद गुरुदेव धर्मसम्राट् श्री स्वामी करपात्री जी महाराज ने विभिन्न प्रमाणों के साक्ष्य में रामायण व महाभारत कालसम्बन्धी वस्तुस्थिति को स्पष्ट किया है, अतएव यह ग्रन्थ विशेषकर इतिहासविज्ञों के लिए अत्यन्त उपादेय है।

पुनश्च, यह जानकर सबको प्रसन्नता होगी कि पूज्यपाद धर्मसम्राट् जी के द्वारा संस्थापित 'वेदशास्त्रानुसंधान केन्द्र' द्वारा पूज्य श्रीचरणों के द्वारा ही लिखित समग्र साहित्य के पुनर्प्रकाशन को त्वरित गति देते हुए अन्यान्य ग्रन्थों को भी यथाशीघ्र प्रकाशित किया जा रहा है।
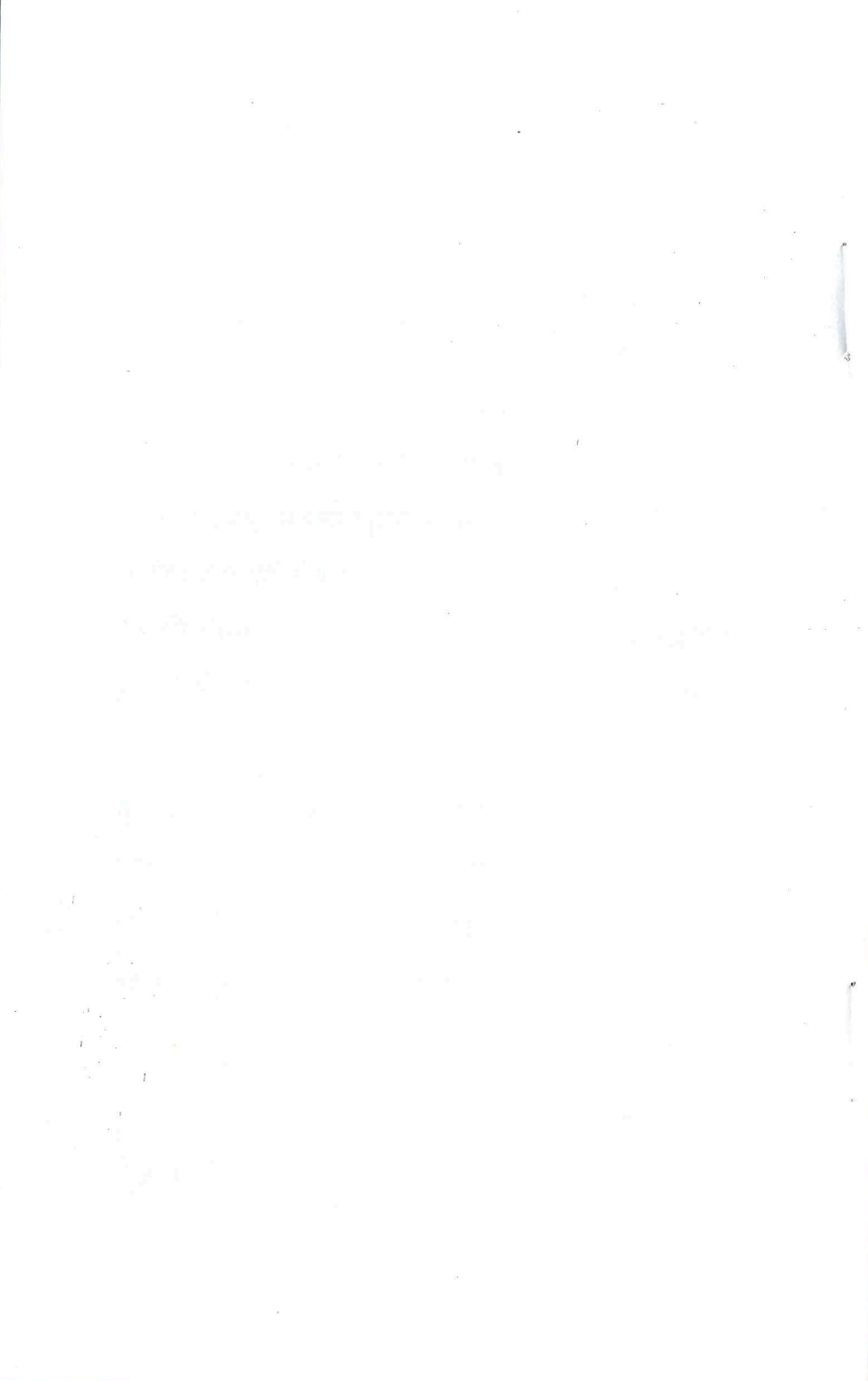
श्रीरामकृपेश्वर महादेव मन्दिर, श्री केदार घाट, वाराणसी

धर्मसम्राट् श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज द्वारा प्रतिष्ठापित

भूमिका
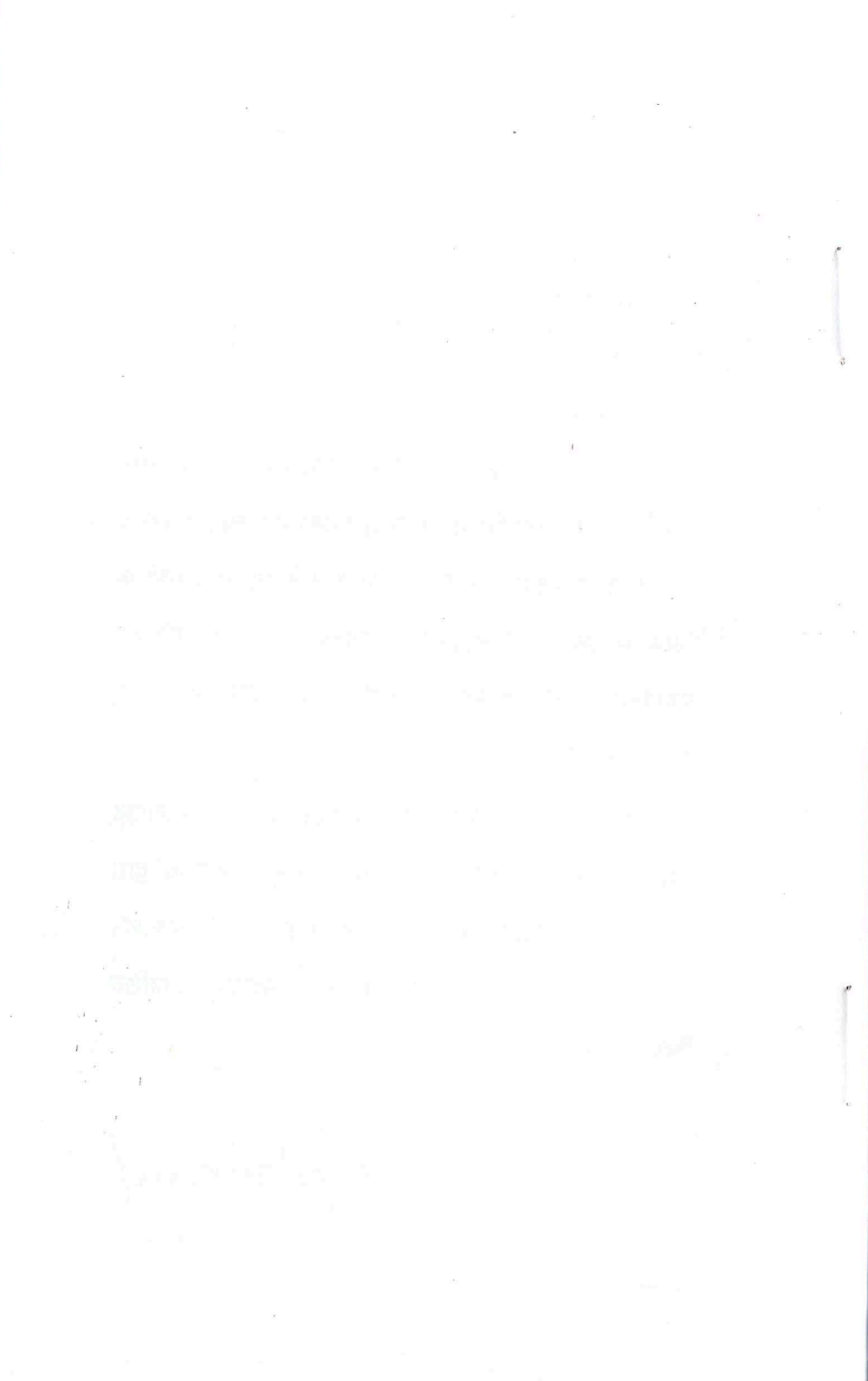
आधुनिक पाश्चात्त्य-शिक्षा-दीक्षा में शिक्षित विद्वानों की लम्बी अवधि के काल को ईसवी सन् के अन्दर ही रखने की भावना बन गयी है। यदि वे बहुत ऊपर उठे तो ईसवी सन् से सौ-दो-सौ वर्ष पहले ले जाते हैं। अरबों वर्ष का समय इस प्रकार कुल तीन हजार वर्ष के अन्दर ही आ जाता है। इस प्रकार इन लोगों के विचार आस्तिकों पर भी छाने लगते हैं और उनका शास्त्रों पर का अटल विश्वास भी डगमगाने लगता है। उसे सम्हालने के लिए मनीषियों का सुदृढ़ प्रयत्न होता है।

भारतीय साहित्य में इतिहास रूप से दो आर्ष ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं और भारतीय जनता पर उनकी अमिट छाप पड़ी है। वे हैं (१) रामायण और (२) महाभारत। वैसे काश्मीर के इतिहास में एक कल्हण की राजतरङ्गिणी प्रसिद्ध है। किन्तु वह ऋषि प्रोक्त नहीं है।पाश्चात्त्य विद्वानों ने उन पर अपनी दृष्टि से विचार किया है और उनकी शिक्षा-दीक्षा में पले हुए आधुनिक भारतीय विद्वान् भी विभिन्न लेखों, ताम्रलेखों और पुरातत्त्व के आधार पर उन्हीं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा स्वबुद्धि प्रसूत अटकल के द्वारा उपजी हुई बातों को परीक्षा द्वारा सुदृढ़ करने पर तुले हुए हैं। इस विषय में डाक्टर साकलिया द्वारा प्रयास समाचारपत्रों के माध्यम से जनता के सम्मुख आया और सभाओं में तथा पृथक् पत्रों द्वारा लोगों ने सकल शास्त्र सहस्यज्ञ सनातन धर्म के मूर्तिमान् स्वरूप विशुद्ध-देहधारी संन्यास के प्रतीक पूज्यपाद गुरुदेव स्वामी करपात्रीजी महाराज से प्रश्न करना प्रारम्भ किया तो उन्होंने सोचा कि इसके निर्णय के लिए एक सम्मेलन बुलाया जाय और वहीं सभी विचारकों के समक्ष इसका निर्णय किया जाय। पहले वाराणसी में ही वह सम्मेलन करने की बात हुई, किन्तु फिर विचारा गया कि अभी थोड़े समय में प्रयाग में कुम्भ होने वाला है, वहीं यह विचार ठीक रहेगा, अतः संवत् २०३३ में प्रयाग में कुम्भ मेला के अवसर पर महाभारत और रामायण के समय निर्धारण के लिए

सम्मेलन बुलाया गया। उसमें पौरस्त्य और पाश्चात्त्य दोनों ही सिद्धान्तों के विद्वान् उपस्थित हुए। पौरस्त्य विद्वानों में पूज्यपाद जगद्‌गुरु शङ्कराचार्य (पुरी), श्रीस्वामी निरञ्जन-देवतीर्थ तथा पाश्चात्त्य-सिद्धान्त के विद्वानों में इन्दौर विश्वविद्यालय के ग.वा. कवीश्वर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दो दिनों तक लगातार विचार चला। उसमें मध्यस्थ पूज्यपाद गुरुदेव श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज थे। यह विशेष ध्यान देने की बात थी कि कुम्भ-मेला में कोई विचार अपना भी इस विषय में जनता के समक्ष दिया जाय। इसलिए संवत् दो हजार तैतीस में ही अतिशीघ्रता में पूज्यपाद गुरुदेव ने रामायण-महाभारत-काल मीमांसा लिखी और वह कुम्भ के समय ही प्रकाशित हुई। उसके कुछ पृष्ठ उसी सम्मेलन में पूज्यपाद गुरुदेव ने पढ़कर सुनाया भी था। विचार यद्यपि जमकर हुआ तथापि उसमें कतिपय अंश जैसे गीता-जयन्ती, युद्ध के दिन, भीष्म-निर्वाण आदि पूर्णरूप से स्पष्ट नहीं हो सके। इन पर विचार करने के लिए चातुर्मास्य का समय निश्चित किया गया और संवत् २०३४ में जबकि पूज्यपाद गुरुदेव का चातुर्मास्य वाराणसी में वृन्दावन-विहारी-भवन में हो रहा था, वहीं यह विचार चला। इस विचार के लिए श्रीवृन्दावन धाम से दो (श्रीस्वामी चिन्मयानन्द एवं श्रीस्वामी निश्चलानन्द सरस्वती) महात्मा दण्डी स्वामी भी पधारे थे, जिसमें श्री निश्चलानन्दजी महाराज का नाम विशेष उल्लेख्य है। उस विचार-विनिमय में इन पंक्तियों का लेखक भी भाग लेता था। अनध्यायों में भी जैसे प्रतिपद्, अष्टमी, चतुर्दशी आदि में विचार हुआ। विचार होने पर जो निर्मथितार्थ निकला उसका सङ्कलन श्रीस्वामी निश्चलानन्दजी महाराज ने किया और उसे पूज्यपाद जगद्‌गुरु शङ्कराचार्यजी महाराज को हमने ट्रेन में उन्हीं के साथ यात्रा करते हुए सुनाया। इसे सुनकर हार्दिक सन्तोष प्रकट करते हुए प्रसन्नता के शब्दों में उनके मुख से यह उद्‌गार निकला कि "जब इसका प्रकाशन हो तो मैं अपना कार्यक्रम स्थगित कर काशी में रहूँगा और इसमें प्रूफ-रीडिङ्ग से लेकर पूर्ण-सम्पादन तक सारा कार्य करूँगा।" इतनी सुन्दर वह वस्तु थी, किन्तु दैव दुर्विपाक से कहीं लुप्त हो गयी। फिर संवत् २०३५ के चातुर्मास्य में (वेद-शास्त्रानुसन्धान-भवन केदारघाट, वाराणसी में हो रहा है) श्रीस्वामी निश्चलानन्द महाराज पधारे हैं। इन्होंने पूर्ण उत्साह और द्विगुणित निष्ठा से वह पहले का लिखा हुआ अंश पुनः बड़े परिश्रम से तैयार किया है।

इस प्रस्तुत निबन्ध में रामायण-महाभारत काल गणना के साथ-साथ कुछ अंश बढ़ा है, जो कि विचारकों के लिए तथा जिज्ञासुओं के लिए परम उपयोगी होगा। विषय-सूची खण्ड दो में वह सारा विषय दिया हुआ है।

प्रोफेसर ग. वा. कवीश्वरजी ने अपनी पुस्तक 'महाभारत युद्ध के काल-गणनात्मक रहस्य) में युद्धकाल में अवकाश मानकर महाभारत के वचनों के आधार पर तिथियों और नक्षत्रों का तालमेल मिलाने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। उसकी समालोचना करके वस्तुतः महाभारत के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर जो तिथियाँ गीता-जयन्ती, युद्धकाल एवं भीष्म-निर्वाण की ठहरती हैं, वह अन्तिम लेख-परिशिष्ट में दी हुई है।

इस लघु-कलेवर पुस्तक में विचार सम्पूर्ण पूज्यपाद गुरुदेव श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज के हैं। हम लोगों ने उसी विचार को लेखनी द्वारा उपनिबद्ध किया है। यह सारा ही ग्रन्थ पूज्यपाद गुरुदेव का ही है और इसे उन्होंने अशरणक्षरण अकारणकरण करुणावरुणालय कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ रामकृपेश्वर भगवान् के चरणों में अर्पित कर दिया है, जिनकी स्थापना इसी संवत् २०३५ में दशहरा के दिन वेद-शास्त्रानुसन्धान-भवन में हुई है।

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी संवत् २०३५ ई.

धर्मसङ्घ

दुर्गाकुण्ड, वाराणसी-२२१००५

मार्कण्डेय ब्रह्मचारी

।।श्रीहरिः।।

श्रीरामायण-महाभारत

काल-मीमांसा

(खण्ड १)

कुछ पाश्चात्त्य विद्वान् और उनके अनुयायी कतिपय भारतीय विद्वान् भी महाभारत के पात्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि को ऐतिहासिक पुरुष न मानकर काल्पनिक मानते हैं एवं महाभारत के युद्ध को प्रत्येक पुरुष के मन में उठने वाली दैवी-आसुरी वृत्तियों का युद्ध अथवा धर्म-अधर्म का युद्ध मानते हैं। इससे वे यह कहना चाहते हैं कि महाभारत कोई इतिहास नहीं है किन्तु ऐसा मानने में उन लोगों के पास कोई प्रमाण नहीं है। हम आगे उन्हीं प्रमाणों का सङ्कलन करने जा रहे हैं, जो उनकी ऐतिहासिकता के पोषक हैं।

ऐतिहासिकता के पोषक प्रमाण –

प्रतिदिन प्रातः स्मरण में उन लोगों का स्मरण ही यह बतलाता है कि वे ऐतिहासिक हैं।

धर्मो विवर्धति युधिष्ठिरकीर्तनेन।
पापं प्रणश्यति वृकोदरकीर्तनेन।।
शत्रुर्विनश्यति धनञ्जयकीर्तनेन।
माद्रीसुतौ कथयतां न भवन्ति रोगाः।।

यदि ये ऐतिहासिक न होते तो इनके पश्चाद्भावी लेखक इनका स्मरण नहीं करते। जिन लेखकों ने स्मरण किया है, उनकी तालिका नीचे दी जा रही है —

महाराज युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ से ही माघ-कवि ने अपना शिशुपालवध-काव्य लिखा है।

संवत् ९७७ के इस ग्रन्थ के टीकाकार वल्लभदेव महाभारत-ग्रन्थ को सवा लाख श्लोकों का मानते हैं ; वे शिशुपालवध के २/३८ श्लोक की टीका में लिखते हैं 'सपादलक्षं श्रीमहाभारतम्।' सवा लाख श्लोकों वाला महाभारत वाविला प्रेस मद्रास-१ से भी छप चुका है।

संवत् ९५७ के राजशेखर भी अपनी काव्यमीमांसा (अ. ३) में महाभारत को शतसाहस्रीसंहिता कहते हैं।

विक्रम की आठवीं शताब्दी के आचार्य आनन्दवर्धन अपने ध्वन्यालोक में महाभारत के शान्तिपर्व के १५२ अध्याय के गृध्रगोमायुसंवाद का उल्लेख करते हैं। वे महाभारत के आदिपर्व के पहले अध्याय (अनुक्रमणी) को एवं हरिवंश को भी महाभारत का अंश मानते हैं —

'ननु महाभारते यावानपि विवक्षाविषय: सोऽनुक्रमण्यां सर्व एवानुक्रान्त: ...... महाभारतावसाने हरिवंशवर्णनेन समाप्तिं विदधता तेनैव कविवेधसा कृष्णद्वैपायनेन सम्यक् स्फुटीकृत:' (ध्वन्यालोक ४, उद्योत कारिका ५)।

संवत् ६८७ के वल्लभी निवासी ऋग्वेदभाष्यकार आचार्य स्कन्दस्वामी अपने भाष्य में महाभारत के अनेक आख्यानों का निर्देश करते हैं —

'भारते तु ऋषय: शापात् सरस्वतीं मोचयामासुरित्याख्यानम्' (ऋ.सं., १/११२/९) यह आख्यान शल्यपर्व के ४४ वें अध्याय में है।

सप्तम शताब्दी में विद्यमान आचार्य दण्डी कवि अपनी अवन्तिसुन्दरी में महाभारत एवं उसके रचयिता महर्षि वेदव्यास का स्मरण करते हैं—

'मर्त्ययत्नेषु चैतन्यं महाभारतविद्यया।
अर्पयामास तत्पूर्वं यस्तस्मै मुनये नम:।।'

(मङ्गलाचरण, श्लोक ३)

दण्डी से पूर्वभावी बाण अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ कादम्बरी एवं हर्षचरित में महाभारत की कथाओं का अनेक प्रकार से स्मरण करते हैं।

'पार्थरथपताकेव वानराक्रान्ता, विराटनगरीव कीचकशतावृता (पृष्ठ ६७), 'भीष्ममिव शिखण्डिशत्रुम्, पराशरमिव योजनगन्धानुसारिणम् (पृष्ठ १०७ तथा पृष्ठ १०८), 'महाभारते शकुनिवधः, (पृष्ठ १४३), महाभारत- पुराण-रामायणानुरागिणा, (पृष्ठ १७९), 'आस्तीकतनुरिवानन्दित-भुजङ्गलोका, (पृ. १८८), 'महाभारते दुःशासनापराधाकर्णनम् , (पृ. १९९), 'महाभारतपुराणेतिहासरामायणेषु (पृ. २६३), महाभारतमिवानन्तगीता-कर्णनानन्दितनरं (पृ. ३१४) (इत्यादि कादम्बरी पूर्वभागे-हरिदासकृत कालिकाता संस्करणे शाके (१८५७)।

एवमेव 'एकाकी तपस्वी वनमृगैः सह संवर्धितः .... समग्रमुद्यतमेकविंशतिकृत्वः कृत्तवंशमुत्खातवान् राजन्यकं रामः' (षष्ठ उच्छ्वास, पृ. २९१), 'हिडिम्बामुखचुम्बनास्वादितमिव रिपुरुधिरामृतमपायि पवनात्मजेन (षष्ठ उच्छ्वास, पृ. २९२), 'जामदग्न्येन च शाम्यन्मन्युशिखिशिखासञ्ज्वरसुखायमानस्पर्शशीतलेषु क्षत्रियक्षतजमहाह्रदेषु अस्नायि' (षष्ठ उच्छ्वास, पृ. २९२)।

'नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम्।।'४

'किं कवेस्तस्य काव्येन सर्ववृत्तान्तगामिना।
कथेव भारता यस्य न व्याप्नोति जगत्त्रयम्।।१०

'कवीनामगलद्दर्पं नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम्।।'१२

इति हर्षचरित उपोद्घाते।

प्रायः बाण के समकालिक जयादित्य और वामन द्रोणपर्वत० सूत्र में महाभारत के द्रोण का स्मरण करते हैं। 'द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम्' (पा.सू., ४/१/१०३) इति सूत्रे 'नैवात्र महाभारतद्रोणो गृह्यते' यह लिखा है। काशिकायां 'ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्' (पा.सू., १/१/११) सूत्र पर महाभारत शान्तिपर्व का 'मणीवोष्ट्रस्य लम्बेते प्रियौ वत्सतरौ मम।' (१७७/१२) श्लोक उद्धृत है।

इनसे भी प्राचीन मीमांसाशास्त्र-व्याख्याता भट्टपाद कुमारिल अपने

औत्पत्तिकसूत्र के वार्तिक में लिखते हैं — 'प्रसिद्धौ हि तथा चाह पाराशर्योऽत्र वस्तुनि। इदं पुण्यमिदं पापमित्येतस्मिन् पदद्वये।......' धर्म और अधर्म दोनों ही प्रसिद्ध हैं। यह बात पराशरपुत्र व्यास ने महाभारत में कही है।

इनके समकालिक बौद्ध विद्वान् धर्मकीर्ति अपने प्रमाण-वार्तिक में 'भारतादिष्वपि इदानीन्तनानामशक्तावपि कस्यचित् शक्तिसिद्धेः।' (प्रमाणवार्तिक, पृ. ४४७-४४८) महाभारत का स्मरण करता है।

इनसे पूर्ववर्ती वाक्यपदीयकार प्रथमकाण्ड श्लोक १४२ में 'गौरिव प्रक्षरत्येका' महाभारत का यह श्लोक इतिहास-नाम से उद्धृत कर रहे हैं।

इनसे प्राचीन कविकुल-गुरु कालिदास जिनके सम्बन्ध में नवभारत टाइम्स ९ जुलाई, १९७६ अपने दैनिक पत्र में लिखता है कि 'उज्जैन के प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता डॉ. वी.एस. वाकांकर ने बतलाया है कि उज्जैन के प्राचीन भाग में गढ़कालिका के निकट मिली ईसापूर्व शताब्दी की मुहर से महाराज विक्रमादित्य के सही काल का पता लगता है। इस मुहर पर स्वस्तिक चिह्न के साथ ईसापूर्व प्रथम शताब्दी की ब्राह्मी लिपि में उज्जैन के राजा कीर्ति का नाम खुदा हुआ है। विक्रम संवत् को पहले कीर्ति संवत् कहा जाता था। ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में पश्चिमी क्षत्रिय शासकों ने उज्जैन पर आक्रमण किया और युद्ध में उनकी हार होने के बाद विजयस्मृति के रूप में कीर्ति संवत् प्रारम्भ हुआ। वहीं एक मिट्टी की मूर्ति में शेर के दाँत गिनते हुए भरत की आकृति बनी है। यह मूर्ति ईसा बाद पहली शताब्दी की है। यह प्रसङ्ग महाकवि कालिदास ने अभिज्ञान-शाकुन्तल में वर्णन किया है। यह मुहर और मूर्ति प्रथम ऐतिहासिक प्रमाण हैं जिनसे महाराज विक्रमादित्य तथा कालिदास का समय ईसापूर्व प्रथम शताब्दी और ईसा बाद प्रथम शताब्दी के बीच नियत करने में सहायता मिलती है।

अपने मेघदूत में भी कालिदास —

'क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः' क्षत्रियों के विनाश की सूचना देने वाले कुरुक्षेत्र में जाना। इससे कौरव पाण्डवों का युद्ध स्मरण कर रहे हैं।

संवत् १९१ से संवत् २१४ पर्यन्त महाराज सर्वनाथ का शासन था। उनका शिलालेख मिला है जिसमें 'एक लाख श्लोकों वाला महाभारत पराशरसुत व्यास ने बनाया' लिखा हुआ है। उक्तं च महाभारते — शतसाहस्र्यां संहितायां परमर्षिणा पराशरसुतेन व्यासेन।'

अब ईसवी सन् से पहले के वचन सङ्कलित किये जा रहे हैं—

वासवदत्ता में उद्धृत न्यायवार्तिककार उद्योतकर (४/१/२१) गौतम-सूत्र में महाभारत वनपर्व का श्लोक उद्धृत करते हैं :—

'अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं नरकमेव वा।।'

(वनपर्व, ३०२८)

यह जीव अज्ञानी है, अपने लिए सुख-दुःख सम्पादित करने में स्वयम् असमर्थ है। ईश्वर की प्रेरणा से ही वह स्वर्ग और नरक जाता है।

योगभाष्यकार पतञ्जलि अपने योगभाष्य में :—

'प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।'

(यो.सू., १/४७)

मीमांसाभाष्यकार शबरस्वामी ने अपने मीमांसा-भाष्य (८/१/१) में आदिपर्व का यह श्लोक उद्धृत किया है।

विस्तीर्य हि महज्जालमृषिः संक्षिप्य चाब्रवीत्।
इष्टं हि विदुषां लोके समासव्यासधारणम्।।'

(आदिपर्व, १/५१)

ऋषियों ने विस्तार और संक्षेप में दोनों प्रकार से वर्णन किया है, क्योंकि विद्वानों को दोनों ही पद्धति प्रिय है। 'एष चाख्यानसमयः' (नि., ७/७) की व्याख्या में दुर्गाचार्य लिखते हैं — 'भारते आख्यानसमयः' अर्थात् महाभारत में यही सिद्धान्त (आख्यान की परिपाटी) स्वीकार किया गया है। (अर्थात्

पुरुषरूप वाले देवता का सिद्धान्त माना गया है) पृथ्वी ने अपना भार हल्का करने के लिए स्त्रीरूप धारण कर ब्रह्मा से प्रार्थना की (महाभारत, आदिपर्व ६४)।

अग्नि ने ब्राह्मणरूप धारण कर वासुदेव (भगवान् श्रीकृष्ण) और अर्जुन दोनों से खाण्डव-वन जलाने के लिए याचना की। (म.भा., आ.प., २२४-२२५) पुरुषरूप से (म.भा., आ.प., २३०) तथा अग्निरूप से (म.भा., आ.प. २२७) खाण्डव-वन को जलाया; इत्यादि स्थलों में मिलता है।

स्वयं महाभारत की पुष्पिका में 'शतसाहस्र्य संहितायाम्' सौ हजार श्लोकों वाली संहिता में ऐसा लिखा है। ये सब, महाभारत एक लाख श्लोक का है, इसमें प्रबल प्रमाण हैं।

मुसलमान इतिहास-लेखक अलबेरूनी के अनुसार महाभारत १८ पर्वों का एक लाख श्लोक-वाला ग्रन्थ है।

दण्डी ने 'भूतभाषामयीं प्राहुरद्भुतार्थां बृहत्कथाम्' से जिस बृहत्कथा का स्मरण किया तथा 'प्राहुः' परोक्षभूत का रूप देकर उनसे बहुत पहले बृहत्कथा की स्थिति बतायी। दण्डी से पूर्वभावी भट्ट-बाण ने भी कादम्बरी के प्रस्तावनामय मङ्गलाचरण में अतिद्वयी कथा लिखकर (वासवदत्ता और बृहत्कथा) दो कथाओं की ओर सङ्केत किया है। उस बृहत्कथा के लेखक गुणाढ्य के समय में महाभारत विद्यमान था। उसमें से उन्होंने रुरुमुनि-कथा, सुन्दोपसुन्द-कथा, कुन्ती-दुर्वासा-कथा, पाण्डु द्वारा मुनि-वध-कथा आदि महाभारत से ली। इसी लिए बृहत्कथा के अनुवादस्वरूप कथासरित्सागर में क्षेमेन्द्रकृत बृहत्कथा-मञ्जरी में भी रुरुमुनि-कथा १४/७५में है, जो महाभारत आदिपर्व आठवें अध्याय में की हैं। सुन्दोपसुन्द-कथा १५/१३५ में है जो आदिपर्व २०१ अध्याय में है। कुन्ती-दुर्वासा कथा १६/३६ में हैं, जो आदिपर्व ११३/३२ में है। पाण्डु-मुनिवध-कथा २१/२० में है जो आदिपर्व १०८ अध्याय में है। शकुन्तला की कथा ३२/१०८ में है जो आदिपर्व ६२ अध्याय में है।

'त्रीनग्नीनिव कौरव्यान् जनयामास वीर्यवान्।
उत्पाद्य धृतराष्ट्रम् च पाण्डुं विदुरमेव च।।

जगाम तपसे धीमान् पुनरेवाश्रमं प्रति।
तेषु तातेषु वृद्धेषु गतेषु परमां गतिम्।।
अब्रवीद् भारतं लोके मानुषेऽस्मिन् महानृषिः।
जनमेजयेन पृष्टः सन् ब्राह्मणैश्च सहस्रशः।।
शशास शिष्यमासीनं वैशम्पायनमन्तिके।
स सदस्यैः सहासीनः श्रावयामास भारतम्।।'

(म.भा., आ.प.)

अर्थात् महर्षि व्यास तीन अग्नियों के समान तेजस्वी कुरुवंशीय धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर को उत्पन्न कर तप करने वन में स्थित अपने आश्रम में चले गये। उनके उत्पन्न होने, बढ़ने और परमगति को प्राप्त होने के अनन्तर महर्षि व्यास ने मनुष्यलोक में महाभारत का निरूपण किया। हजारों ब्राह्मणों के साथ जनमेजय के प्रश्न करने पर अपने शिष्य वैशम्पायन को महाभारत सुनाने की आज्ञा दी। वैशम्पायन यज्ञ के सदस्यों के साथ आसीन होकर यज्ञ के मध्य-मध्य के विराम में उनसे प्रेरित होकर महाभारत सुनाया करते थे। इससे स्पष्ट है कि जनमेजय के सर्पयज्ञ समाप्ति के पूर्व और धृतराष्ट्द्ध, पाण्डु एवं विदुर के देहावसान के अनन्तर महाभारत संहिता की रचना हुई।

यद्यपि पाण्डु का निधन पहले ही हो चुका था तो भी धृतराष्ट्र को युद्ध के बाद बीसवें वर्ष में परमपद प्राप्त हुआ। १५ वर्ष तक तो धृतराष्ट्र युधिष्ठिर के साथ ही रहे। सोलहवें वर्ष में भीम के वाग्बाण से निर्विण्ण होकर विदुर के साथ वन चले गये।

'ततः पञ्चदशे वर्षे समतीते नराधिपः।
राजा निर्वेदमापेदे भीमवाग्बाणपीडितः।।'

(म.भा., आश्रमवासिकपर्व, २/१२)

वहाँ धर्माचरण करते हुए एक वर्ष बीतने पर देवर्षि नारद ने युधिष्ठिर से कहा था कि धृतराष्ट्र के जीवन के अभी तीन वर्ष शेष हैं।

'तत्राहमिदमश्रौषं शक्रस्य वदतः स्वयम्।
वर्षाणि त्रीणि शिष्टानि राज्ञोऽस्य परमायुषः।।'

(म.भा., आश्रमवासिकपर्व, २०/३२)

महाभारत का युद्ध कलि और द्वापर की सन्धि में हुआ।

'अन्तरे समनुप्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्।
समन्तपञ्चके युद्धं कुरुपांडवसेनयोः।।'

(महाभारत, आदिपर्व, २/१३)

अर्थात् द्वापर और कलि के मध्य में कौरव-पाण्डवों का युद्ध हुआ। महाभारत युद्ध के ३६ वर्ष बीतने पर परीक्षित का राज्याभिषेक हुआ। परीक्षित ने ६० वर्ष तक राज्य किया।

महाभारतयुद्ध से ९६ वर्ष पर बाल्यकाल में ही जनमेजय का राज्याभिषेक हुआ। वयस्क होने पर विवाह हुआ। विवाह के कुछ ही दिनों बाद उत्तङ्क की प्रेरणा से जनमेजय ने सर्पसत्र आरम्भ किया। उसी यज्ञ में वैशम्पायन ने महाभारत सुनाया था। उसी महाभारत को महर्षि व्यास ने जय नामक महाकाव्य कहा। यह 'जय' ही विविध उपाख्यानों के सहित लिखा हुआ भारतीय युद्ध का विशद् इतिहास है। महाराज युधिष्ठिर के विजय के उपलक्ष्य में लिखे जाने के कारण उनके समय में ही इसका लिखा जाना उचित है। तथा धृतराष्ट्र के समक्ष उनका पराभव लिखना उचित न होता, अतः महाराज धृतराष्ट्र को परमपद प्राप्त होने के अनन्तर महाभारत युद्ध के बीस वर्ष बाद और ३६ वें वर्ष के पहले ही महाभारत-संहिता-निर्माण का समय है।

अहं तु कीर्तिमेतेषां कुरूणां भरतर्षभ।
पांडवाना च सर्वेषां प्रथयिष्यामि मा शुचः।।

(म.भा. भी.म. २/१३)

इसका निष्कर्ष यह है कि — महाभारत के ही प्रमाण-वचनों से सिद्ध होता है कि महाभारत-युद्धकाल से बीस वर्ष बाद धृतराष्ट्र का परलोक-वास हुआ था। धृतराष्ट्र के मरने के बाद और जनमेजय के सर्पसत्र के पूर्व महाभारत की रचना हुई है।

जनमेजय का अभिषेक कलि के ६० वर्ष अथवा ९६ वर्ष बीतने पर हुआ। महाभारत आदिपर्व, ४९/१७ और सौप्तिकपर्व, १६/१५ में लिखा है कि राजा परीक्षित ने ६० वर्षों तक राज्य किया और कलि गताब्द ३६

के बाद उनका शासन आरम्भ हुआ। इसके अनुसार महाराज जनमेजय का अभिषेक काल कलिगताब्द ९६ वर्ष प्रमाणित होता है। आदिपर्व ४९/२६ के अनुसार ६० वर्ष की अवस्था में परीक्षित का देहान्त हुआ। परीक्षित का जन्मकाल और कलियुग का आरम्भकाल एक ही है। इसके अनुसार जनमेजय का अभिषेक कलि गताब्द ६० में ही प्रमाणित होता है। जिन श्लोकों में ६० वर्षों तक शासन करने की बात कही गयी है, उनका अभिप्राय भी ६० वर्षों तक की अवस्था से ही समझना चाहिए। जनमेजय का राज्याभिषेक छोटी ही अवस्था में हुआ था। अतएव अभिषेक के २४ वर्ष बाद सर्पसत्र हुआ। इससे यह भी प्रमाणित हो जाता है कि महाभारत की रचना कलिगताब्द २० वर्ष के बाद और कलिगताब्द ८४ वर्ष के पूर्व हुई।

महाराज युधिष्ठिर कलिगताब्द ३६ में भगवान् श्रीकृष्ण के परम धाम पधारने के पश्चात् दिवंगत हुए थे। यह महाभारत-संहिता युधिष्ठिर के विजयोपलक्ष्य में जयेतिहास के रूप में अनेक उपाख्यानों के साथ रची गयी थी। अत: उसकी रचना युधिष्ठिर के राजत्वकाल और भगवान् कृष्ण के परमधाम पधारने से पहले ही हुई थी। यह स्वाभाविक बात है कि जिस राजा का विजय-इतिहास लिखा जाता है, वह प्राय: उसके शासन-काल में ही लिखा जाता है। अतएव कलिगताब्द २० वर्ष बाद महाराज धृतराष्ट्र के स्वर्गवास के पश्चात् युधिष्ठिर के शासन-काल में ही कलिगताब्द ३६ के पूर्व ही महाभारत की रचना प्रमाणित होती है। महाभारत की रचना तीन वर्षों में पूर्ण हुई थी। श्रीगणेशजी ने उसे लिखा था। इस प्रकार महाभारत का रचनाकाल विक्रम संवत् पूर्व ३०२४ और विक्रम संवत् पूर्व ३००८ के मध्य एवं ई. सन् पूर्व ३०८१ और ई. पूर्व ३०६५ के बीच में ही प्रमाणित होता है, और महर्षि वैशम्पायन ने उसी समय को कलियुगारम्भ से ८४ वें वर्ष विक्रम संवत् पूर्व २९६०, ई. सन् पूर्व ३०१७ में महाराज जनमेजय को सर्पपत्र के अवसर पर सुनाया था। महाभारत-युद्ध-काल ही कलिप्रारम्भ (कलि संवत्) अथवा युधिष्ठिर संवत् कहा जाता है। ज्योतिष-ग्रन्थों, पञ्चाङ्गों में परम्परा से वही संवत् चला है।

इसके अतिरिक्त कुछ शिलालेखों में भी इस कलि संवत् का उल्लेख है। इसका आरम्भ ईसवी सन् से ३१०२ वर्ष पूर्व माना जाता है। दक्षिण

के चालुक्यवंशी राजा पुलकेशी के समय एहोले की पहाड़ी पर के जैन मन्दिर का शिलालेख भारत-युद्ध से ३७३५ वर्ष बीतने पर और शक राजाओं के ५५६ वर्ष बीतने पर बना है। वहाँ के श्लोक हैं —

'त्रिंशत्सु त्रिसहस्त्रेषु भारतादाहवादितः।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु गतेष्वब्देषु पञ्चसु।।
पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतीषु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्।।'

यह मन्दिर आज से १३४२ वर्ष पहले बना है। ३७३५ में १३४२ मिलाने पर ५०७७ वर्ष होता है। यही सं. २०३३ तथा शाके १८९८ के पञ्चाङ्ग में गतकलि ५०७७ वर्ष लिखा है।

पाश्चात्त्यों के आक्षेप

क्रिश्चियन लासेन ने सन् १८३७ में अपनी पुस्तक 'इण्डियन एक्टीविटीज' में कहा कि — "जिस भारत को सूत ने कहा था वह वास्तव में मूल पुस्तक भारत का द्वितीय संस्करण है। इसीलिए 'आश्वलायन गृह्यसूत्र' में भारत और महाभारत का उल्लेख मिलता है। आश्वलायन का समय ईसवी सन् पूर्व ३५० हो सकता है, इस प्रकार महाभारत का निर्माण-काल ईसा-पूर्व ४६० वर्ष से पहले का नहीं हो सकता।"

बेवर की दृष्टि में पाणिनि के साहित्य मे वासुदेव, अर्जुन आदि का उल्लेख होने पर भी भारत या महाभारत का उल्लेख नहीं है; अतः पाणिनि के समय तक महाभारत की रचना नहीं हुई।

मेगस्थनीज ने भी भारत महाभारत का उल्लेख नहीं किया, सुतरां पाणिनि-पूर्वभावी आश्वलायन के गृह्यसूत्र में भारत, महाभारत का उल्लेख प्रक्षिप्त है।

लुडविग ने सन् १८८४ से महाभारत पर विचार प्रारम्भ किया। उनकी राय में न तो महाभारत कोई इतिहास है और न तो पाण्डव ऐतिहासिक पुरुष। पाण्डु का अभिप्राय है पीला सूर्य, धृतराष्ट्र के अन्धेपन का अर्थ है शरत्कालीन सूर्य और गान्धारी की आँखों पर पट्टियाँ बाँधने का अर्थ है सूर्य का बादलों में छिप जाना तथा वसन्त के सूर्य का नाम कृष्ण।

होज्यान ने कहा है कि — "पाण्डव और उनके पक्षपाती कृष्ण छली कपटी थे। उन्हीं लोगों की ओर से युद्ध में छल हुआ। कौरवों का नाम वेद और ब्राह्मणों में आता है, अत: वे प्राचीन है। वे ही धर्मभीरु और न्यायप्रिय हैं।"

'किसी ने बौद्ध राजा, सम्भवत: अशोक की प्रशंसा में एक काव्य लिखा। ब्राह्मणों द्वारा बौद्धधर्म का पराभव होने पर ब्राह्मणों ने उस काव्य में कुछ हेर-फेर कर उसे अपने साँचे में ढाल लिया तथा कौरवों की प्रशंसा पाण्डवों के नाम कर दी और धीरे-धीरे बौद्धधर्म का नाम भी उड़ा दिया।'

मैक्समूलर ने कुछ अंशों में लासेन के मत का अनुसरण किया और उनकी दृष्टि में महाभारत एक कवि की कृति नहीं है। परन्तु उसके सभी रचयितागण मनुप्रोक्त धर्म के पक्के अनुयायी ब्राह्मण रहे होंगे। ब्राह्मण-सम्प्रदाय में शिक्षा होने पर भी पाँचों भाई एक स्त्री से विवाह कर बैठे। प्रत्यक्ष धर्म-विरुद्ध इस घटना पर ब्राह्मण-सम्पादकों ने तरह-तरह के रङ्ग चढ़ाये, परन्तु यह छिपा न रह सका।

बुल्हर के अनुसार महाभारत कोई इतिहास या पुराण नहीं।

ब्राडर का कहना है कि ईसा के जन्म से ५०० या ४०० वर्ष पहले जब ब्रह्मा सर्वप्रधान देवता माने जाते थे, उस समय आदिकवि ने कुरुभूमि में जन्म ग्रहण किया होगा, वह गायक रहा होगा। उसने लोगों के मुख से अज्ञात जाति के साथ कुरुवंश की पराजय सुनी होगी। उसी वियोगान्त घटना के आधार पर उसने स्वदेशी वीरों को क्षात्रधर्म के मूर्तिमान् आदर्श तथा यदुवंशी वीर कृष्ण के साथ पाण्डव, मत्स्य आदि विजातियों को नीच-कुलोद्भव और अन्याय से विजयी बतलाकर चित्रित किया होगा। वही प्राचीन भारतगान आश्वलायनगृह्यसूत्र में उल्लिखित है।

उसके बहुत समय बाद कृष्णजन्म के अनन्तर कृष्णभक्त पुरोहितों ने बुद्ध के विरुद्ध कृष्ण या विष्णु को खड़ा किया। पाण्डुवंशियों की सहायता से पुरोहितों की चेष्टाएँ सफल हुई, और चौथी शताब्दी में विष्णु ही प्रधान देव हुए। फिर तो पुरोहितों ने आदिमहाभारत में पाण्डवों की अपकीर्ति को कीर्तिरूप में और उनके विपक्षी कुरुओं की कीर्ति को निन्दारूप में बदलकर

आदिमहाभारत का कलेवर परिवर्तित कर दिया, और दाक्षिणात्य पाण्डुवंश को एक शाखा के रूप में मान लिया।'

डेन्मार्क के डाक्टर सोर्यनसन कोपेन हेगेन विश्वविद्यालय के अध्यापक थे। 'महाभारत और भारतीय संस्कृति में उसका स्थान' शीर्षक निबन्ध लिखने के कारण उन्हें आचार्य पदवी मिली। वे महाभारत का मूल कोई प्राचीन पौराणिक गाथा और उसका रचयिता एक ही व्यक्ति मानते हैं।

बुल्हर कोजे नेसिस दे ने महाभारत को कई पीढ़ियों में धीरे-धीरे विकसित काव्य माना है। किन्तु उसकी रचना एक ही समय में सम्पादक-मण्डल द्वारा वे मानते हैं। वे युद्ध को कोरी कविकल्पना मानते हैं। उनका कहना है कि महाभारत एक रूपक है, जिसमें पाण्डव धर्म के कौरव अधर्म के प्रतिनिधि-रूप में दिखाये गये हैं।

उनके शिष्य डालमान ने उनके सिद्धान्तों की पूर्ण व्याख्या करते हुए बताया है कि पहले दो प्रकार के साहित्य रहे होंगे:— (१) राजवंशों की पौराणिक गाथायें और (२) उपदेशपरक कवितायें। सर्वसाधारण में प्रचार की दृष्टि से इन दोनों भावों को मिलाकर कविमण्डल ने एक नवीन रचना कर दी, वही महाभारत है। यह सब पाश्चात्यों का आक्षेप है।

समाधान

वस्तुतः वे लोग ईसाई-मत के प्रचार को ध्यान में रखकर हम लोगों के साहित्यों को देखते हैं, विचार करते हैं और मनमानी कल्पना की उड़ान भरते हैं, किन्तु प्रमाण कुछ भी उपस्थित नहीं करते; जिससे उनकी बात प्रमाण की कसौटी पर खरी उतरे।

अस्तुत: अतीत व्यक्तियों एवं घटनाओं के सम्बन्ध में इतिहास को छोड़कर और कोई भी दूसरा प्रमाण हो नहीं सकता। अटकल-मात्र से न तो कुछ सिद्ध ही होगा और न विद्वानों को सन्तोष ही, जबकि जिस ग्रन्थ के विषय में अटकल लगायी जा रही है, उस ग्रन्थ से ही वह अटकल विरुद्ध ठहरता है। महाभारत में ही जय, भारत या महाभारत का निर्माता कृष्णद्वैपायन व्यास को ही कहा गया है तथा महाभारत के निर्माण का समय भी उसमें दिया है। फिर उसके विरुद्ध अटकलबाजी का क्या महत्त्व हो सकता है ?

इन सभी पाश्चात्त्यों की अटकलबाजी भी परस्पर विरुद्ध ही है। कोई महाभारत को एककर्तृक, कोई अनेककर्तृक, कोई एक काल में निर्मित और कोई भिन्न-भिन्न काल में निर्मित मानते हैं।

उनकी दुरभिसन्धि का यह जाज्वल्यमान उदाहरण है कि पाणिनि ने अष्टाध्यायी में 'महान् व्रीह्यपराह्णगृष्टीष्वासजाबालभारभारतहैलिहिलरौरवप्रवृद्धेषु' (पा., ६/२/३८) में महाभारत का स्मरण किया है, अतः पाणिनि द्वारा उल्लेख न होने से आश्वलायन गृह्यसूत्र में भारत-महाभारत का नाम क्षेपक है यह ठीक नहीं। व्रीहि, अपराह्ण, गृष्टि, इष्वास, जाबाल, भार, भारत हैलहिल, रौरव और प्रवृद्ध शब्द परे (बाद में) रहें तो महान् शब्द को अन्तोदात्त स्वर होता है। जैसे महाव्रीहि, महापराह्ण आदि में अन्तोदात्त होता है, वैसे ही महाभारत में भारत शब्द परे रहते महान् शब्द को अन्तोदात्त होता है। इस सूत्र से पाणिनि ने महाभारत शब्द बनाया है। फिर बेवर द्वारा यह कहना कि पाणिनि ने भारत-महाभारत का स्मरण नहीं किया, यह अत्यन्त प्रमाद है।

उनके पास एक भी ठोस प्रमाण नहीं है जिससे वे लोग अपनी अटकलबाजी को प्रमाण की कसौटी पर खरी उतार सकें। उसके विपरीत हमारे महाभारतानन्तर-भावी सभी साहित्यों में महाभारत का और उसके व्यासकर्तृकत्व का उल्लेख मिलता है, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। श्रुतियों में जहाँ विरोधाभास दीखता हैं अर्थात् परस्पर विरुद्धार्थक दो श्रुतियाँ दीखती है वहाँ समन्वय से उनका अर्थ किया जाता है। उत्तरमीमांसा में तो समन्वयाध्याय एक अध्याय ही व्यास जी ने रखा है।

पूर्वमीमांसा में भी समन्वय बताया गया है। उसी पद्धति से महाभारतादि में भी समन्वय करना चाहिए। जो हमारी चीज है; हमारे लाखों पीढ़ी करोड़ों पीढ़ी के पूर्वजों से हमें प्राप्त है उसके अर्थ का प्रकार हमलोगों से ही समझना चाहिए। मनमानी अटकल नहीं भिड़ानी चाहिए। धर्म में वही इतिहास प्रमाणरूप से आदरणीय होते हैं, जो धर्मशास्त्र के अविरुद्ध होते हैं। आधुनिक समय में भी संविधान व्यवहार के अनुसार होता है, इतिहास के अनुसार नहीं। क्योंकि इतिहास दुर्भाग्यपूर्ण भी हो सकता है। भारतीयों के अनुसार जो महाभारत में है, वही अन्यत्र है। जो महाभारत में नहीं, वह कहीं नहीं। 'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्'।

आश्वलायन-गृह्यसूत्र के तर्पण के प्रसङ्ग में 'सुमन्तुजैमिनिवैशम्पायनपैल-सूत्रभाष्यभारतमहाभारतधर्माचार्याः' यह कहा है। इसका अर्थ है कि सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन, पैल, सूत्र, भाष्य, भारत और महाभारत नाम के धर्माचार्य तृप्त हों। ये भारत और महाभारत धर्माचार्य हैं, कोई ग्रन्थ नहीं।

देवीभागवत-महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के बीसवें अध्याय में इस सूत्र की व्याख्या है।

'सुमन्तुर्जैमिनिर्वैशम्पायनः पैलसूत्रयुक्।
भाष्यभारतपूर्वश्च महाभारत इत्यपि।।
धर्माचार्या इमे सर्वे तृप्यन्त्विति च कीर्तयेत्।। २०।।'

इसकी टीका में नीलकण्ठ कहते हैं — सुमन्तुजैमिनि वैशम्पायनपैलसूत्रभाष्यभारतमहाभारतधर्माचार्यास्तृप्यन्तु इत्येको मन्त्रः सूत्रानुरोधात्। अर्थात् ये सब धर्माचार्य हैं; एक ही में सबका नाम लेकर तर्पण करना चाहिए। क्योंकि सूत्र में वैसा ही कहा गया है।

इसी प्रकार कलियुग में कब्र की पूजा होगी; लोग देवतापूजन नहीं करेंगे। स्थान-स्थान पर कब्र ही दृष्टिगोचर होंगी, मन्दिर कम दीखेंगे। यह सब महाभारत में देखकर कुछ लोगों ने कहा कि बुद्ध के मरने के बाद उनका शरीर दफनाया गया, उसके बाद ये श्लोक पीछे से जुड़े हैं। किन्तु ऐसी बात नहीं है। मार्कण्डेय महर्षि कलियुग में भविष्य कैसा होता है, यह बता रहे हैं। उन्होंने कई प्रलय देखे हैं। उसी प्रसङ्ग से ये श्लोक कहे गया हैं।

'एडूकान् पूजयिष्यन्ति वर्जयिष्यन्ति देवताः।'

(६५/७ (म.भा., वनपर्व १९०)

'एडूकचिह्ना पृथ्वी न देवगृहभूषिता।
भविष्यति युगे क्षीणे तद्युगान्तस्य लक्षणम्।।'

(६७/७ (म.भा., वनपर्व १९०)

इसी का समर्थन विष्णु, वायु, मत्स्यपुराण से होता है।

महाभारत से आज तक

पौराणिक राजवंशावलियों और महाभारत-संहिता आदि संस्कृत ग्रन्थों से प्रमाणित कलियुगारम्भ काल (जो कि विक्रमसंवत् पूर्व ३०४५ से ईस्वी सन् पूर्व ३१०२ है) वह ही महाभारत युद्धकाल है और वह ही परीक्षित का जन्मकाल है।

महाराज युधिष्ठिर के समकालीन मगध देश के महाराज जरासन्ध के पौत्र और महाराज रुद्रदेव के पुत्र सौमाधि (अथवा सौमापि) से लेकर इस वंश के २२वें राजा अरिंजय (अथवा रिपुंजय) तक का राज्यकाल एक सहस्र वर्ष ही पुराणों के अनुसार सिद्ध होता है।

इस वंश के अनन्तर प्रद्योत वंश प्रारम्भ होता है। इस वंश में प्रद्योत वंश से लेकर नन्दिवर्धन तक ५ राजा हुए हैं। इनका राजत्व (शासन) काल १३८ वर्ष है।

प्रद्योत वंश के अनन्तर शिशुनाग वंश का राज्य प्रारम्भ होता है। इस वंश में शिशुनाग से लेकर महानन्दी तक १० राजा हुए हैं। इनका शासन काल ३६२ वर्ष है। यह सब संख्या १००+१३८+३६२ = १५०० होती है। इन १५०० वर्षों के बाद महापद्मनन्द के वंश का राज्य है। स्वयं महापद्मनन्द का राज्य ८८ वर्ष और उनके सुमाल्यादि ८ लड़कों का राज्य १२ वर्ष अर्थात् लड़कों सहित महापद्मनन्द के राज्य का समय १०० वर्ष है। यह युधिष्ठिर संवत् या कलि संवत् १६०० वर्ष तक का राज्यकाल है। कलि संवत् १६०१ में मौर्य वंश (चन्द्रगुप्त) का राज्यकाल प्रारम्भ होता है। यह काल विक्रम संवत् पूर्व १४४५ वर्ष और ईसा पूर्व १५०२ वर्ष होता है। इस प्रकार कलि संवत् प्रारम्भ के समय से मगध राजवंश के २२, प्रद्योत वंश के ५ और शिशुनाग वंश के दश तथा महापद्मनन्द के दो कुल ३९ राजा होते हैं। चालीसवां राजा मौर्य वंश का चन्द्रगुप्त है। इस वंश में दश राजा हुए हैं जिनका शासन काल १३७ वर्ष है। यहाँ तक का समय युधिष्ठिर संवत् अथवा कलि संवत् १७३७ तक होता है।

इसके बाद शुङ्गवंश का राजत्वकाल है, जिसमें पुष्यमित्रादि दश राजा हुए हैं। इनका शासनकाल ११२ वर्ष है। इसके बाद कण्व-वंश का राजत्वकाल

है। इसमें वसुदेवादि चार राजा हुए हैं। इनका शासन-काल ४५ वर्ष है। इसके अनन्तर आंध्रवंश का शासन काल है। इसमें बलिपुच्छकादि तीस राजा हुए हैं। इनका शासन काल ४५६ वर्ष हैं। ११२ + ४५ + ४५६ = ६१३ वर्ष। यह समय युधिष्ठिर संवत् २३५० तक होता है।

युधिष्ठिर संवत् २३५१ में आभीरवंशी राजाओं का राज्य प्रारम्भ होता है जो विक्रम संवत् पूर्व ६९५ वर्ष और ईसा पूर्व ७५२ वर्ष है।

ऊपर कहा जा चुका है कि मौर्यवंशीय चन्द्रगुप्त का राज्यकाल युधिष्ठिर संवत् अथवा कलि संवत् १६०१ से प्रारम्भ होता है। इसका शासनकाल २४ वर्ष है। अर्थात् विक्रम संवत् पूर्व १४४४ और ईसा पूर्व १५०१ वर्ष में चन्द्रगुप्त का शासनकाल प्रारम्भ होकर कलि संवत् (या युधिष्ठिर संवत्) १६२४ विक्रम पूर्व १४२० ईसा पूर्व १४७७ में समाप्त होता है। कलि संवत् (या युधिष्ठिर संवत्) १६२५ विक्रम पूर्व संवत् १४२१ वर्ष तथा ईसा पूर्व १४७७ में विन्दुसार का शासन प्रारम्भ होता है। इसके बाद अशोक का शासनकाल कलि संवत् (या युधिष्ठिर संवत्) १६५०, विक्रम संवत् पूर्व १३९५, ईसा पूर्व १४५२ से प्रारम्भ होकर २६ वर्ष अर्थात् कलि संवत् (या युधिष्ठिर संवत्) १६७६ तक अर्थात् विक्रम संवत् पूर्व १३८९ ईसा पूर्व १४२६ वर्ष तक है।

ऐसी स्थिति में पाश्चात्त्य विद्वानों के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य का शासनकाल ईसापूर्व ३२३ वर्ष की कल्पना निराधार है।

भारतीय इतिहासों के अन्वेषण के लिए सर्वप्रथम 'एशियाटिक सोसाइटी' कलकत्ता, संस्था की स्थापना हुई। इसमें सर विलियम जोन्स ने भारतीय इतिहास के विषय में सर्वप्रथम एक वक्तव्य दिया था। उसमें उन्होंने यूनानी इतिहास-लेखकों की नगरी 'पालिबोध्रा' को पाटलिपुत्र का अपभ्रंश और 'सेण्ड्रा कोटस' को पौराणिक मौर्यवंशीय चन्द्रगुप्त का अपभ्रंश बताया था तथा चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण-काल ईसवी सन् पूर्व ३२२ वर्ष सिद्ध किया था। अब इस पर विचार करना चाहिए कि यह कहाँ तक उचित है ?

मेगस्थनीज का भारत भ्रमण (जो हिन्दी में आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल द्वारा अनूदित हुआ है) में लिखा है — 'डायनुशस पश्चिम से आया। ....

.... उसी वंश में हेराक्लीज .... भी हुआ था, जो साधारण मनुष्यों से बल बुद्धि में बड़ा था और उसने बहुत सी स्त्रियों से विवाह करके बहुत से पुत्र उत्पन्न किये ....। उसने बहुत से नगर बसाये, जिसमें सबसे बड़ा और विख्यात नगर पालिबोध्रा है।

महाभारत-मीमांसा, पृ. ९१ में मेगस्थनीज की पुस्तक का अवतरण दिया हुआ है। उसमें हेराक्लीज से सेण्ड्राकाण्टस तक १३८ पीढ़ियाँ दी है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि सेण्ड्राकाण्टस से १३८ पीढ़ी पहले 'पालिबोध्रा' बसी थी।

प्रसिद्ध इतिहासविशारद प्लोयनी ने लिखा है कि पालिबोध्रा नगर गंगा और इरानावोअस के संगम से २०० मील ऊपर की ओर स्थित था। एस.डी. आनविल्ले के मत से 'ईरानावोअस' यमुना नदी है। इससे यह सिद्ध होता है कि गंगा-यमुना के संगम से २०० मील ऊपर की ओर पालिबोध्रा बसी थी। सर विलियम जोंस के वक्तव्य के अनुसार आरायन के मत से गंगा और ईरानकोअस का संगम प्रसई (प्रस्सी) जनपद में था। कर्टियस का मत है कि मेगस्थनीज का पालिबोध्रा प्रभद्रक (या पारिभद्रक) जनपद है।

उपर्युक्त विवरण से यह सिद्ध होता है कि गंगा यमुना के संगम से ऊपर २०० मील पर पालिबोध्रा नगरी सेण्ड्राकाण्ट्स से लगभग २८ सौ वर्ष पहले बसाई गई थी। आधुनिक विद्वानों के अनुसार प्रतिपीढ़ी २० वर्ष मानने पर १३८ पीढ़ी में २७६० वर्ष होते है। वर्तमान में पाटलिपुत्र प्रयाग से लगभग ढाई सौ मील नीचे की ओर है।

पुराणों के अनुसार शिशुनाग वंश के आठवें राजा उदायी (अथवा उदासी) ने, जिसका राज्याभिषेक कलि संवत् (युधिष्ठिर संवत्) १३८५ (अर्थात् १६५९ वर्ष विक्रम संवत् पूर्व, तथा १७१७ वर्ष ईस्वी सन् पूर्व) में हुआ था अपने अभिषेक से चौथे वर्ष में उसने गंगा के दक्षिण तट पर कुसुमपुर (अर्थात् पाटलिपुत्र) बसाया। इसके विपरीत पालिबोध्रा के बसाये जाने का समय ईसा पूर्व ३०८२ वर्ष के लगभग होता है और उसके बसाने वाले का नाम हेराक्लीज लिखा है तथा पाटलिपुत्र के बसाये जाने का समय ईसवी पूर्व १७१५ है और उसका बसाने वाला शिशुनागवंशीय आठवाँ राजा उदायी (अथवा उदासी)

है। अतः पालिबोध्रा किसी भी तरह पाटलिपुत्र नहीं हो सकती और न तो सेण्ड्राकाण्ट्स चन्द्रगुप्त मौर्य ही हो सकता है। इसी प्रकार 'जैन पुस्तक परिशिष्ट' पटवन में भी पाटलिपुत्र को शिशुनागवंशीय आठवें राजा द्वारा बसाये जाने का उल्लेख है।

बृहत्संहिता में लिखा है —

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्टिरे नृपतौ।
षट्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालः तस्य राज्ञश्च।।

(अध्याय १३, श्लोक ३)

अर्थात् महाराज युधिष्ठिर के शासन-काल में सप्तर्षि मघा नक्षत्र में थे। महाराज युधिष्ठिर के सं. २५२६ वर्ष में शक प्रवृत्त हुआ था। इसके समर्थन में भट्टोत्पल ने अपनी बृहत्संहिता की विवृत्ति में वृद्धगर्ग के निम्न वचन का उल्लेख किया है —

कलिद्वापरसन्धौ तु स्थितास्ते पितृदैवतम्।
मुनयो धर्मनिरता ....।।

उपर्युक्त वाराही-संहिता में "शक" शब्द से सम्प्रति प्रचलित शालिवाहन शक नहीं समझना चाहिए। किन्तु शक का अर्थ है संवत्। कल्हण ने उसका अर्थ भ्रमवश शालिवाहन शक समझ लिया। अर्थात् २५२६ कलिगताब्द (अथवा युधिष्ठिर गताब्द) में शक का प्रारम्भ हुआ। उस संवत् में शक का प्रारम्भ समझकर कल्हण ने ६५३ वर्ष अधिक देखा और उतनी संख्या सभी संवतों में घटाकर प्रयोग किया।

पाश्चात्य विद्वानों में विशेषकर जेनरल प्रिंसेव और जेनरल बकिंघम ने सर विलियम के वक्तव्य को प्रमाणित मानकर जिन गुहाभिलेखों, स्तम्भाभिलेखों तथा शिलालेखों की खोज की है, उनमें चौदह प्रज्ञापनवाले लेख में अन्तियोक आदि पाँच नामों को यूनान के भिन्न-भिन्न भागों के राजाओं की कल्पना की है। उनको ईसवी संवत् पूर्व २५८, या प्रज्ञापनों का अंकित होना मानकर अभिलेखों के लिखाने वाले राजा को अशोक के समय का प्रतिपादित किया है।

वस्तुत: अशोक के शिलालेख धर्मलेख नाम से प्रसिद्ध हैं — देवानां प्रिय, प्रियदर्शी राजा तथा देवानां प्रिय अथवा प्रियदर्शी। बिना किसी व्यक्ति के नाम के द्वारा लिखाये गये जितने धर्मलेख अब तक गुहाओं, स्तम्भों तथा शिलाओं में पाये गये हैं, वे धर्मलेख कब लिखे गये ? इसका उनमें कोई उल्लेख नहीं है, और न तो संवत् का ही उल्लेख मिलता हैं। एक में अशोक्स ये चार अक्षर मिलते हैं। शेष किसी भी लेख में अशोक का नाम नहीं है। इतना ही नहीं अभिलेखों में देवानां प्रिय:, प्रियदर्शी राजा की द्विरुक्ति, त्रिरुक्ति तो की गयी है, किन्तु अशोक इन तीन अक्षरों का उल्लेख नहीं है। अत: वे सब धर्मलेख अशोक-वर्धन के माने जाने में कोई तर्क नहीं है। क्योंकि जिन विषयों का वर्णन सातवें स्तम्भाभिलेख के दूसरे तथा तेरहवें प्रज्ञापन में है, ठीक उसी प्रकार का वर्णन चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपने भारत में हर्षवर्धन के राज्यकालवर्णन के प्रसंग में किया है। पाश्चात्यों के मतानुसार यदि ये सभी धर्मलेख अशोक के मान लिए जाते है तो पौराणिक राजवंशावलियों को राजत्वकालों के आधार पर मौर्य अशोकवर्धन का राजत्वकाल कलि संवत् १६५० विक्रम स. पूर्व १३९५ ई. पू. १४५२ से लगाकर कलि संवत् १६७६ वि. पू. १३६९ ई.पू. १४२६ तक २६ वर्ष होता है। ऐसी दशा में शिलालेख के प्रज्ञापनों में यूनान के उन पाँच राजाओं के नाम पढ़ना जिनके राजत्वकाल ई. पू. २८५ से लेकर २३९ तक माने गये है सर्वथा भ्रान्ति ही है।

पाश्चात्त्यों के विद्याव्यसन लगन एवं अनुसन्धानपरायणता प्रशंसनीय हैं, किन्तु जब हमारे वेद, शास्त्र, इतिहास की छानबीन करने बैठते हैं तब वे उलटे परिणाम पर पहुँचते हैं। लार्ड मैकाले ने लिखा है कि पाश्चात्त्य शिक्षा पाये हुए किसी हिन्दू को मूर्तिपूजन में विश्वास नहीं रह जायेगा।

मैक्समूलर ने तो यहाँ तक कहा कि वेदमन्त्र दकियानूसी और निरर्थक हैं। महाभारत एक व्यक्ति की कृति नहीं। अपनी पुस्तक 'चिप्स फ्राम दि जर्मन वर्कशाप' में वे और लिखते हैं कि वेद हिन्दूधर्म की चाभी हैं। उनके दृढ़ तथा दुर्बल स्थानों का ज्ञान ऐसे मिशनरियों के लिए अनिवार्य है जिन्हें ईसाई बनाने की उत्कट इच्छा है। ऐसे वाक्यों से उनके समस्त मनोभावों का पता लगता है।

भारतीय ज्योतिर्विज्ञान और महाभारत

पाश्चात्यों का यह भी मत है कि भारतीय ज्योतिर्विज्ञान महास्थूल गणना वेदांग ज्योतिष की गणना से भी स्थूल थी। जिसके अनुसार भीष्म पितामह ने १३ वर्ष के सौर मान में तेरह वर्ष पाँच महीने बारह दिन की व्यवस्था विराटपर्व में दी थी। सिद्धान्त-गणित का ज्ञान भारतीयों को यूनानी ज्योतिषियों से हुआ है तथा उन्हीं से नक्षत्र मण्डल की १२ राशियों का विभाग करना भी सीखा। भारत में तो सूर्यादि सप्तवारों की भी जानकारी नहीं थी। वारों का ज्ञान काडिल्या वालों से हुआ। अतएव जिन ग्रन्थों में बारह राशियों का विभाग, सूर्यादि वारों का नाम तथा ज्योतिष-सिद्धान्त गणना का उल्लेख है वे सभी ग्रन्थ ई. सन् पूर्व ४०० वर्ष से प्रथम के नहीं हो सकते। जिन ग्रन्थों में चैत्रादि मासों का उल्लेख है वे सभी वेदांग-ज्योतिष एवं ब्राह्मण-ग्रन्थों के बीच के माने जाने चाहिए। जिन ग्रन्थों में यवन-जाति की विद्वत्ता, आक्रमणकारिता, वीरता का उल्लेख है वे सभी ग्रन्थ सिकन्दर के आक्रमण ई. सन् पूर्व ३२३ के पीछे के हैं। ई. स. पूर्व पाँच सौ वर्ष के नहीं है। परन्तु उनकी उक्त कल्पना में भ्रान्ति या ईर्ष्यामूलकता ही है। ग्रीक देश के अर्थ में ई. सन् पूर्व कुछ शतियों से यूनान नाम की प्रसिद्धि हुई है।

महाराज ययाति के पुत्र तुर्वसु एवं उनके पुत्र यवन राजाओं की प्रसिद्धि बहुत पुरानी है। महाभारत आदिपर्व (८५/३४) में कहा गया है— 'यदोस्तु यादवा जातास्तुर्वसोर्यवना: स्मृता:'— यदु से यादव हुए है और तुर्वसु से यवन। उनका राज्य यवन राज्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मनु ने मनुस्मृति (१०/४३-४५) में बताया है कि पाण्ड्य, चोल, द्रविड़, कम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, दरद, खश आदि क्षत्रिय जातियाँ संस्कारों के लोप होने तथा ब्राह्मण-सम्बन्धहीन होने से वृषल (म्लेच्छ) हो गयी। इन्हीं राज्यों का वर्णन अशोक के प्रज्ञापन दो, पाँच और तेरह में आया है। उससे भी और प्राचीन ग्रन्थों में भी यूनान बनने के सहस्रों वर्ष पूर्व चन्द्रवंशी ययाति के पौत्र यवन के वंशधरों के अर्थ में ही यवन शब्द का उल्लेख हुआ है न कि यूनान के यूनानियों के अर्थ में। अत: महाभारतादि ग्रन्थों में यवनों के पराक्रम का वर्णन है। ज्योतिष-विज्ञान-सम्बन्धी पाश्चात्यों

की धारणा भी गलत है। भारतीय ज्योतिर्विज्ञान सृष्टि से लेकर अन्त तक एक एवं निर्विकार है।

विराटपर्व में राजर्षि भीष्म-पितामह के तेरह वर्ष की प्रतिज्ञा के विषय में जो कहा गया है कि उस समय तक १३ वर्ष पाँच महीने बारह दिन द्यूतक्रीड़ा के दिन से बीत जायँगे। इससे यही स्पष्ट है कि भारतीय-युद्ध-काल में भी हमारी वही सनातन कालगणना राष्ट्रमिति के रूप में मान्य थी। जिसके अनुसार श्रीरामचन्द्र ने १४ वर्ष का वनवास पूर्ण किया। उसी के अनुसार पाण्डवों ने तेरह वर्ष की प्रतिज्ञा पूरी की थी। वह गणना है सौर-चन्द्र, जिसका वर्ष चैत्रशुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ होकर चैत्र कृष्ण अमावस्या को पूरा होता है। उसमें वर्षमान कम से कम ३५४ और अधिक से अधिक ३८४ दिन होता है। उसी वर्ष के अनुसार कौरवों के ठीक चौदहवें वर्ष के प्रथम दिन में वेदांग ज्योतिष के गणनानुसार १३ वर्ष पाँच महीने बारह दिन होते हैं।

उदाहरणत: — यदि द्यूतक्रीड़ा की तिथि विक्रम संवत् १९९० ज्येष्ठ कृष्ण ८ बुधवार मान लिया जाय तो उस दिन राश्यादि सूर्य है १/३/३०/४१ और तारीख १७ मई सन् १९३३ ई.। अर्जुन के प्रकट होने की तिथि विक्रम संवत् २००३ ज्येष्ठ कृष्ण ८ शुक्रवार माने तो उस दिन राश्यादि सूर्य हैं १/९/५२/९ ता. २४ मई सन् १९४६ ई.। ऐसी स्थिति में सौर-चान्द्र मान से १३ वर्ष एक दिन होगा। अर्थात् १४वें वर्ष का पहला दिन, वही सौरमान से होगा १३ वर्ष ६ दिन, अंग्रेजीमान से होगा १३ वर्ष ७ दिन, चौदहवें वर्ष का सातवाँ दिन। वही वेदांग-ज्योतिष के चन्द्र मान से होगा १३ वर्ष ५ महीने १२ दिन। यही भीष्म की व्यवस्था है। इससे स्पष्ट है कि महाभारत-युद्ध-काल में सिद्धान्त-ज्योतिष के अनुसार ही पञ्चांग-गणना होती थी। ऊपर का उदाहरण सिद्धान्त-ज्योतिष गणना के पञ्चांग द्वारा ही किया गया है। सिद्धान्त-ज्योतिष की गणना अहर्गण द्वारा मध्यम सूर्य चन्द्रादि ग्रहों में मन्दोच्च, शीघ्रोच्च संस्कार देकर ही की जाती है। अतएव भारतीय सनातन कालगणना सौर-चान्द्र हैं। उसके लिए सूर्यादि वार का ज्ञान, चैत्रादि मास का ज्ञान और नक्षत्रमण्डल के बारह विभाग का ज्ञान अत्यावश्यक है। बिना इसके सनातन कालगणना हो ही नहीं सकती। एको अश्वो वहति सप्तनामा

(ऋ. सं., १/१६४/२) आदि अनेक मन्त्रों में सात दिन का वर्णन है। मैत्रायणी उपनिषद् छठें प्रपाठक अंश १४ में ९ अंश वाली राशियों का वर्णन है। अन्नं वा अस्य सर्वस्य योनिः', कालश्चान्नस्य, सूर्यो योनिः कालस्य। तस्यैतद्रूपम् .... द्वादशात्मकं वत्सरम् एतस्याग्नेयमर्धमर्धं वारुणम्। मघाद्यं श्रविष्ठार्धमाग्नेयम् क्रमेण, उत्क्रमेण सार्पार्धं श्रविष्ठार्धान्तं सौम्यम् तत्रैकैकमात्मनो नवांशकम्।

इसमें बारह राशियों का एक वत्सर और प्रत्येक राशि नवांशक अर्थात् सवा दो नक्षत्र की कही गयी है। श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण में भी राशियों का वर्णन है —

'ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ।।८।।
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह।।९।।

(बा.का. १८)

अर्थात् शुक्ल नवमी को अदितिदैवत पुनर्वसु नक्षत्र में (जब स्वगृही होकर पाँच ग्रह उच्च के थे बृहस्पति और चन्द्रमा का योग था) कर्क लग्न में राम का जन्म हुआ। वेदांग-ज्योतिष, याजुष-ज्योतिष श्लोक ११ के मासपति के विचार में तथा आजकल के पञ्चांगों तक में सिद्धान्त गणित अविच्छिन्न रूप से देखा जा सकता है। इसी तरह चैत्रादि मासों के नामों का तथा अयन, विषुव, विष्णुपद एवं षडशीति नाम से सूर्य-संक्रान्तियों का महाभारत-संहिता में वर्णन है। ऋग्वेदादि के समान ही वार एवं संक्रान्तियाँ भी अनादि हैं।

जब पूर्वोक्त रीति से महाभारत और गीता की इतनी प्राचीनता सिद्ध होती है तो उसमें वर्णित रामायण, रामायण के निर्माता महर्षि वाल्मीकि तथा रामायण के पात्रों की अतिप्राचीनता सुतरां सिद्ध है।

पुराणों के सन्दर्भ में

कहा जाता है कि पुराणों के अनुसार कृष्ण से लेकर चन्द्रगुप्त मौर्य तक १३८ राजाओं की पीढ़ियों का अनुमान लगातार प्रत्येक का शासन २० वर्षों का माना जाय तो ३०८० ई. पूर्व होता है। श्रीगोपाल अय्यर

ने महोपनन्द तक ३७, राज्यपीढ़ियों को मानते हुए प्रत्येक का शासनकाल २२ वर्ष का मानकर महाभारत घटना को ११९३ ई. पूर्व निर्धारित किया है। पूर्वोक्त पद्धति के अनुसार यह स्पष्ट है कि १३८ पीढ़ी न होकर कुल ४० होती है।

वस्तुत: जहाँ परीक्ष्य ग्रन्थ के आधार पर कालनिर्धारण में कठिनाई हो वहीं पर ऐसे अनुमानों से काम चलाना पड़ता है। पीढ़ियों के आधार पर भी सही काल-निर्धारण शक्य नहीं है। क्योंकि सभी घटनाएँ और सभी व्यक्ति ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं होते है। किन्तु जिन महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के द्वारा समाज या राष्ट्र को धार्मिक आध्यात्मिक और सामाजिक अभ्युत्थान के लिए कुछ शिक्षा मिलती हो उन्हीं घटनाओं और व्यक्तियों का इतिहास में उल्लेख होता है। अन्यथा जिनका ऐतिहासिक एवं प्रागैतिहासिक काल ६ हजार वर्ष में ही समाप्त हो जाता है उनके अनुसार भी यदि संसार के एक वर्ष के इतिहास को एक पन्ने में ही लिखा जाय तो भी ६ हजार पन्ने का इतिहास होगा। फिर जिन भारतीयों की वर्तमान सृष्टि का कुछ कम दो अरब वर्ष का इतिहास है। उनका इतिहास दो अरब पन्नों का होगा फिर भी उसे कौन कितने दिन में अध्ययन करेगा और उतने बड़े इतिहास का निष्कर्ष कितने दिन में निकालकर कब उससे सबक सीखकर उससे फायदा उठायेगा।

अत: सर्वज्ञकल्प महर्षियों ने टेलीप्रिण्टर के समाचारों, संवाददाताओं के तारों के आधार पर नहीं, आँखों देखे के आधार पर भी नहीं, किन्तु योगजन्य ऋतम्भरा प्रज्ञा के आधार पर समाज एवं राष्ट्र के धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक उत्थान के उपयोगी ज्ञानप्रद इतिहास का उल्लेख किया है। अन्यथा गड़े मुर्दों को बार-बार उखाड़ने जैसी पुरानी बातों को बार-बार दुहराना मात्र इतिहास का मुख्य विषय हो ही नहीं सकता है। अतएव सर्वज्ञकल्प महर्षियों ने अनादि, अपौरुषेय वेदादि शास्त्रों से अनुप्राणित राम और युधिष्ठिर जैसे विशिष्ट अवतारी पुरुषों एवं उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों एवं घटनाओं का प्रामाणिक उल्लेख किया है। रामायण महाभारत तथा पुराणों के राजाओं की सूची में भी मुख्य-मुख्य उल्लेख्य राजाओं का उल्लेख हुआ है, सबका नहीं। उनमें भी कुछ लोगों की आयु बहुत अधिक थी।

रामायण के अनुसार श्रीरामचन्द्र जी ने ११००० वर्ष तक राज्य किया। दशरथ जी का उससे भी अधिक काल तक राज्य करने का उल्लेख है। उनमें कई राजा कृतयुग के, कई त्रेता के थे। युधिष्ठिर द्वापरान्त के राजा थे। मानवीय वर्ष के अनुसार कलि की आयु ४३२००० की है। उससे दुगुनी द्वापर, तिगुनी त्रेता तथा चौगुनी कृतयुग की आयु है। चौदह मन्वन्तरों में वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर का यह अट्ठाईसवाँ कलियुग है। श्रीराम का प्रादुर्भाव २४ वें त्रेता का है।

चतुर्विंशे युगे चापि विश्वामित्रपुरःसरः।
राज्ञो दशरथस्याथ पुत्रः पद्मायतेक्षणः।।'

(हरिवंश, १/४१/१२१)

'चतुर्विंशे युगे वत्स त्रेतायां रघुवंशजः।
रामो नाम भविष्यामि चतुर्व्यूहः सनातनः।।'

(ब्रह्माण्ड पुराण, उपोद्धातपाद अ. ३७, श्लो. ३०)

वैवस्वत मनु को हुए अब तक बारह करोड़ पाँच लाख तैतीस हजार वर्ष से भी अधिक हुए। वर्तमान सृष्टि को हुए अब तक १ अरब ९५ करोड़ ५८ लाख २५ हजार से अधिक हुआ। ब्रह्मा के एक दिन में १४ मनु बीतते हैं; जिसमें ४ अरब २ करोड़ वर्ष होते हैं। १५ खरब, ५५ अरब २० करोड़ मानववर्ष का उनका एक वर्ष होता है।

अब तक ब्रह्मा के ५० वर्ष बीत गये हैं। जिसमें ७ नील ७७ खरब, ६० अरब वर्ष बीत गये हैं। इस महान् काल में रामायण, महाभारत तथा पुराणों में वर्णित पीढ़ियाँ बहुत ही कम ठहरती हैं। अतः व्यासदेव ने उनमें से मुख्य-मुख्य राजाओं का वर्णन किया है। उसी वंश में होने वाले पूर्व-पूर्व मुख्य पुरुषों के पुत्रादि-रूप में उत्तरोत्तर मुख्य पुरुषों का वर्णन किया है। लिंगपुराण में कहा है —

'एते इक्ष्वाकुदायादा राजा नः प्रायशः स्मृताः।
वंशे प्रधानां एतस्मिन् प्राधान्येन प्रकीर्तिताः।।'

(लिङ्गपुराण, पूर्वार्द्ध ६६/३३)

पुरातत्त्व रामायण- महाभारत

पुरातत्त्व के आधार पर भी काल-निर्धारण आंशिक रूप से ही हो सकते हैं जिसे भूरे चित्रित पात्र स्तर की उपलब्ध सामग्रियों से महाभारतकालीन सभ्यता से सम्बन्धित किया गया है, उनसे महाभारत की विकसित सभ्यता से मेल नहीं खाता। महाभारत में वर्णित अस्त्र-शस्त्र पूर्ण विकसित सुसज्जित प्रणाली के द्योतक हैं। उत्खनन में प्राप्त सामग्रियाँ महाभारत में वर्णित सामग्रियों से मेल नहीं खातीं। अतएव वे सब महाभारतकालीन नहीं है।

कुछ लोगों का मत है कि महाभारत में वर्णित लौह अस्त्र-शस्त्रों का आविर्भाव ईसा के कुछ शताब्दी पूर्व हुआ तो महाभारत की घटना ईसा से हजारों वर्ष पूर्व कैसे सम्भव है ? यह कथन वैसे ही है जैसे वायुयान का विकास तो १९ शती में हुआ फिर रामायण में पुष्पक विमान का वर्णन कैसे हो सकता है ?

वस्तुतः सृष्टि में अनेक बार ऐसे ह्रास-विकास होते रहते हैं जिन्हें भुलाया नहीं जा सकता। विगत ५३ वर्ष पहिले जोन. टी. रीड को नेवादा में एक पदचिह्न और एक जूते का तल्ला मिला। उन्होंने अपने चट्टानविषयक भूगर्भ-सम्बन्धी ज्ञान से उसे ५० लाख वर्ष पुराना बतलाया। जाहिर है कि उस समय मनुष्य सूई से सिल कर जूता पहनता था तो लौह का प्रादुर्भाव तो उससे कितने पहले हुआ होगा। अगस्त १९२३ में थियोसोफिकल पाथ में हैनसन ने लिखा है कि उसे तल्ले में सूई सिलाई, धागों में मरोड़, धागों के माप मिले हैं जो आजकल के अच्छे से अच्छे बने जूतों के समान पक्के और सूक्ष्म हैं। इससे सिद्ध होता है कि ५० लाख वर्ष से मनुष्य जूता पहनता है और वह सुई, सूत, सिलाई, नपाई का ज्ञान प्राप्त कर चुका था। कभी-कभी जङ्गली युग एवं सभ्यता युग की विरुद्ध वस्तुएँ एक स्थान में मिल जाती हैं। मोहनजोदड़ों और हड़प्पा के खण्डहरों में जहाँ सभ्यता के चिह्न मिलते हैं वहीं पत्थर के शस्त्र जङ्गलीपन के चिह्न मिलते हैं।

रामायण

हरिवंश एवं ब्रह्माण्डपुराण में चौबीसवें त्रेता में रामावतार लिखा हुआ है। वाल्मीकीय रामायण का माहात्म्य और उसके रचयिता का वर्णन

महाभारत में मिलता है। राम, सीता तथा दशरथ के भी नाम का उल्लेख वेदों में है।

वाल्मीकि ने ब्रह्मा के आदेश पर समाधि द्वारा ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त कर राम, सीता, लक्ष्मण, भरत- शत्रुघ्न, दशरथ और कौशल्यादि की गुप्त-प्रकट सभी घटनाओं का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करके वर्णन किया है। वाल्मीकि ने समुद्र नहीं देखा था, यह वही कह सकता है जिसने वाल्मीकि का, समुद्र-वर्णन नहीं पढ़ा। उसके द्वारा ही किसी झील में पुल बाँधने को सेतुबन्ध और मध्यप्रदेश में लंका बतलाया जा सकता है। इसी तरह रत्नजटित पादुका और स्वर्णमुद्रिका को प्रक्षिप्त कह सकता है।

राम की अँगूठी

सांकलिया आदि कुछ सज्जन यह भी कहते हैं कि भगवान् श्रीराम ने मुनि का वेष धारण करके जब राज्य की कोई सम्पत्ति न लेकर वन की यात्रा की तब फिर उनके पास अंगूठी कहाँ से आई ? और स्वर्णभूषित रत्नजटित पादुका कहाँ से आई ? अँगूठी तो भगवान् श्रीराम ने हनुमान् को सीतान्वेषण के लिए प्रस्थान के समय और रत्नजटित स्वर्णभूषित पादुका भरत को चित्रकूट से अयोध्या वापस आते समय दी थी। अतः इन अंशों को प्रक्षिप्त मानना चाहिए। दूसरी बात यह है कि धातुद्रावण (धातुओं के गलाने) का ज्ञान लोगों को बाद में हुआ। पहले तो लोग पत्थरों और हड्डियों के औजारों से लड़ते थे। लोहे का तीर बहुत बाद में बना। फिर उन पर नामोट्टंकन तो ईसा सन् के आस-पास ही लोगों ने जाना। अतः वाल्मीकीय रामायण में रामनामांकित अंगुलीय का वर्णन और रत्नजटित स्वर्णभूषित पादुका का वर्णन पीछे मिलाया गया है। परन्तु वैसी शंका निर्मूल ही है, क्योंकि दण्डकारण्य-प्रस्थान के समय माता कौल्या के पास जब उनकी अनुज्ञा प्राप्त करने भगवान् श्रीराम गये, तब माता ने राजकुमारों के योग्य आसन दिया। उस पर न बैठ कर केवल उसका स्पर्श करके श्रीराम ने कहा कि — मुझे दण्डकारण्य जाना है। इस आसन से अब क्या मतलब ? मेरे लिए तो विष्टर आसन इस समय चाहिए। चौदह वर्ष निर्जन वन में मुनियों के समान (मसाला आदि डालकर बनाया हुआ मांस नहीं) कन्दमूल फल से जीवनयात्रा

चलाते हुए रहना है।

'गमिष्ये दण्डकारण्यं किमनेनासनेन मे।
विष्टरासनयोग्यो हि कालोऽयं मामुपस्थितः।।२८।।
चतुर्दश हि वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने।
कन्दमूलफलैर्जीवन् हित्वा मुनिवदामिषम्।।२९।।'

(अयो.का. २०)

यहाँ प्रश्न उठता है कि वे वन में गृहस्थाश्रम में गये हैं अथवा वानप्रस्थ आश्रम में? उत्तर स्पष्ट है — अयोध्या में गृहस्थाश्रम में है। वहाँ से उनका निर्वासन हो रहा है। आश्रमान्तर-प्राप्ति की कोई बात नहीं। गृहस्थ ही रहकर वे वनवास में गये हैं। राज्य की सम्पत्ति उन्होंने छुई नहीं। फिर भी भगवान् श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा है कि — महाराज जनक के यज्ञ में महात्मा वरुण ने रौद्रदर्शन (देखने से ही हृदय कँपा देने वाले) दो धनुष, दो दिव्य अभेद्य कवच तथा सदा बाणों से भरे रहने वाले दो तरकस और सूर्य के समान चमकीले दो हेम (स्वर्ण) परिष्कृत तलवार ये सब हमको दहेज में दिये थे। आचार्य के घर से उन्हें लेकर तुम शीघ्र जाओ।

'ये च राज्ञे ददौ दिव्ये महात्मा वरुणः स्वयम्।
जनकस्य महायज्ञे धनुषी रौद्रदर्शने।। २९।।
अभेद्ये कवचे दिव्ये तूणीचाक्षय्यसायकौ।
आदित्यविमलाभौ द्वौ खड्गौ हेमपरिष्कृतौ।। ३०।।'

(अयो. का., ३१)

जिस धनुष को भगवान् राम ने तोड़ा, वह धनुष भी वरुण ने महाराज जनक के पूर्वजों को दिया था। उसकी चर्चा जगदम्बा सीता ने माता अनसूया के सामने तथा महाराज जनक ने ब्रह्मर्षि विश्वामित्र और राम, लक्ष्मण के समक्ष किया है। दण्डकारण्य में महर्षि अगस्त्य ने स्वर्ण और हीरा जटित विश्वकर्मा द्वारा निर्मित विष्णुदैवत दिव्य धनुष, ब्रह्मा जी द्वारा प्रदत्त अमोघ सूर्य के समान तेजस्वी दिव्य बाण और इन्द्र द्वारा दिये हुए जाज्वल्यमान बाणों से सदा भरे रहने वाले दो तूणीर तथा सुवर्ण की म्यान और मुट्ठी वाली तलवार भी दी है।

'इदं दिव्यं महच्चापं हेमवज्रविभूषितम्।
वैष्णवं पुरुषव्याघ्र निर्मितं विश्वकर्मणा।।३२।।
अमोघः सूर्यसंकाशो ब्रह्मदत्तः शरोत्तमः।
दत्तौ मम महेन्द्रेण तूणी चाक्षय्यसायकौ।।३३।।
सम्पूर्णौ निशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिव पावकैः।
महारजतकोशोऽयमसिर्हेमविभूषितः।।३४।।'

(अरण्यकाण्ड, १२)

अर्थात् राजकुमार की स्वयं व्यक्तिगत सम्पत्ति बहुत थी। भगवान् श्रीराम वह भी चाहते तो ले जा सकते थे, क्योंकि वह राज्य की नहीं थी। जब उन्होंने दान किया तो उसे ले जाने में कोई बाधा नहीं थी। उनके मामा के यहाँ से जो शत्रुञ्जय नामक हाथी उन्हें मिला था उसका दान उन्होंने वसिष्ठ जी के पुत्र सुयज्ञ को एक हजार निष्क (स्वर्णमुद्रा) दक्षिणा के साथ दे दिया। ब्राह्मणों में सर्वश्रेष्ठ अगस्त्य और विश्वामित्र को बुला कर उनका पूजन कर दान के लिए ऐसे रत्नों की वर्षा की जैसे खेत में मेघ जल की वर्षा करता है। वाल्मीकिरामायण में बहुत प्रकार से दान का वर्णन किया गया है। भगवान् राम अपनी अपने नाम वाली अँगूठी अपने साथ ले गये थे। इन्द्र के हाथ में जैसे वज्र है, विष्णु के हाथ में चक्र है और भगवान् त्रिनेत्रधारी शङ्कर के हाथ में त्रिशूल है, वैसे ही द्विज के हाथ में पवित्री है।

'यथा वज्रं सुरेन्द्रस्य यथा चक्रं हरेस्तथा।
त्रिशूलं च त्रिनेत्रस्य तथा विप्रपवित्रकम्।।'

यह पवित्री सुवर्ण की बहुत पवित्र मानी गयी है।

'अन्यान्यपि पवित्राणि कुशदूर्वामयानि च।
हेमालयपवित्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।'

यह वचन हेमाद्रि से उद्धृत है। अर्थात् कुश दूर्वा की अन्य पवित्रियाँ सुवर्ण पवित्री (अंगूठी) की सोलहवीं कला (पसँहा) के बराबर भी नहीं होती। यह सुवर्ण पवित्री अनामिका के मूल में पहिननी चाहिए।

अत्रि का वचन है —

'अनामिकामूलदेशे पवित्रं धारयेद् द्विजः।'

गुरु द्रोण के हाथ में भी यही पवित्री थी जिसे सूखे कुएँ में डालकर उन्होंने गुल्ली के साथ निकाल कर कौरव, पाण्डवों को चकित कर दिया था।

रही पादुका की बात उसे तो भरत जी अपने साथ अभिषेक सामग्री के साथ ले गये थे, उसी में वह गयी थी। जब भगवान् श्रीराम ने वन से राज्य के लिए अयोध्या लौटना कथमपि स्वीकार नहीं किया तब भरत जी के मन में वह आशंका घर कर गयी जिसकी सम्भावना कौसल्या ने की थी। जैसे सिंह कभी दूसरे द्वारा आनीत मांस खाना नहीं चाहता इसी प्रकार परभुक्त राज्य को राम स्वीकार नहीं करेंगे।

'न परेणाहृतं भक्ष्यं व्याघ्रः खादितुगच्छति।
एवमेव नरव्याघ्रः परलीढं न मन्यते।।'

(अयो., ६१)

अतः भरत जी ने स्वर्णभूषित पादुका श्रीराम के सम्मुख रखकर कहा—''हे भगवान्! आप अपने चरणों को इन दोनों पादुकाओं पर रख दीजिए, ये ही गजसिंहासनस्थ होकर सम्पूर्ण जनों का योग-क्षेम निर्वाह करेंगी।''

'अधिरोहार्य पादाभ्यां पादुके हेमभूषिते।
एते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमं विधास्यतः।।'

(अयो., ११२)

भरत जी ने राज्य को भगवान् श्रीराम का धरोहर माना।

'भरतः शिरसा कृत्वा संन्यासं पादुके ततः।।१५।।'

(अयो., ११५)

यदि भगवान् रामचन्द्र के पास स्वर्णभूषित पादुका होती तो भरत जी उनसे यह नहीं कहते कि इस पर 'अधिरोह' चढ़ चाइये।

ऐतरेय ब्राह्मण में सौवर्ण पलङ्ग का वर्णन है, जिस पर बैठ कर होता सम्राट् की स्तुति करता है। सुवर्णद्रावण का ज्ञान यदि उस समय न होता तो सुवर्ण का तार या शय्या कैसे बनती ? इसी प्रकार नामांकन की बात

है। मुद्राराक्षस नाटक का आधार ही राक्षस के नाम वाली मुद्रा (अंगूठी) है। अभिज्ञान शाकुन्तल में महाकवि कालिदास ने भी दुष्यन्त के नाम वाली अंगूठी को ही प्रत्यभिज्ञा (पहचान का साधन) बताया है। भगवान् श्रीराम ने हनुमान् जी को अपने नाम से अंकित अँगूठी जगज्जननी सीता के पहचान के लिए दी।

'ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोपशोभितम्।
अंगुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परन्तपः।। १२।।'

(किष्किन्धा., ४४)

हनुमान् जी ने जगज्जननी सीता से कहा कि "हे देवि ! मैं रामदूत वानर हूँ। देखो रामनाम से अंकित यह अँगूठी मैं लाया हूँ।"

'वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः।
रामनानाङ्कितम् चेदं पश्य देव्यंगुलीयकम्।।२।।'

(सुन्दर., ३६)

भरत जी को भी हनुमान जी ने सुनाया कि मैंने रामनाम वाली अँगूठी सीता के अभिज्ञान के लिए दी है।

'अभिज्ञानं मया दत्तं रामनामांगुलीयकम्।।४५।।'

(युद्धकाण्ड, १२६)

इसी तरह भगवान् राम के नामों वाले बाणों की चर्चा भी रामायण में है।

इसी प्रकार सीता रावण के वश में कैसे हो — इसका विचार करते हुए महोदर ने रावण से कहा कि आप सीता को प्राप्त करके उसके भोग में क्यों विलम्ब कर रहे हैं ? आप जब चाहें तब सीता वश में हो सकती है। मैंने कुछ उपाय सोचा है, यदि आपको जँचे तो उसके अनुसार आप कार्य करें। हम द्विजिह्व, संह्रादी, कुम्भकर्ण और वितर्दन ये पाँच महावीर राम का वध करने जा रहे हैं, इसकी घोषणा करा दीजिये। हम लोग युद्ध में जाकर यदि शत्रुविजय कर लेते है तो दूसरे उपाय की आवश्यकता नहीं। यदि शत्रु मरा नहीं और हम लोग युद्ध में बचे रहे तो युद्ध से वापस आ

जायेंगे। हम लोगों का शरीर रामनामांकित बाणों से क्षत-विक्षत होगा, रुधिर शरीर से निकल रहा होगा। हम लोग मिथ्या ही कहेंगे कि हम लोगों ने राम और लक्ष्मण को खा लिया है और आप के चरणों में प्रणाम करेंगे। आप बनावटी प्रसन्नता दिखाते हुए हम लोगों की इच्छा के अनुसार इनाम दें। एकान्त में सीता के पास जाकर आप उसे अनेक प्रकार की सान्त्वना दें। धनधान्य, रत्नों का लोभ दें तब सीता आप के वश में हो जायगी।

'लब्ध्वा पुरस्ताद् वैदेहीं किमर्थं त्वं विलम्बसे।
यदीच्छसि तदा सीता वशगा ते भविष्यति।।२०।।
दृष्टः कश्चिदुपायो मे सीतापस्थानकारकः।
रुचितश्चेत्त्वया बुद्ध्वा राक्षसेन्द्र ततः शृणु।।२१।।
अहं द्विजिह्वः संह्रादी कुम्भकर्णो वितर्दनः।
पञ्च रामवधायैते निर्यान्तीत्यवघोषय।। २२।।
ततो गत्वा वयं युद्धं दास्यामस्तस्य यत्नतः।
जेष्यामो यदि ते शत्रून् नोपायैः कार्यमस्ति नः।।२३।।
अथ जीवति नः शत्रुर्वयं च कृतसंयुगाः।
ततः समभिपत्स्यामो मनसा यत्समीक्षितम्।।२४।।
वयं युद्धादिहेष्यामो रुधिरेण समुक्षिताः।
विदार्य स्वतनुं बाणै रामनामाङ्कितैः शरैः।।२५।।
भक्षितो राघवोऽस्माभिर्लक्ष्मणश्चेति वादिनः।
ततः पादौ ग्रहीष्यामः त्वं नः कामं प्रपूरय।।२६।।
भक्षितः ससुहृद्रामो राक्षसैरिति विश्रुते।
अकामा त्वद्वशं सीता नष्टनाथा भविष्यति।।२७।।

(युद्धकाण्ड, सर्ग २६)

इसी प्रकार डाक्टर साकलिया एवं उनके जैसे कुछ नवीन पुरातत्त्वविदों ने रामायण की कतिपय घटनाओं तथा विशिष्ट स्थानों की प्रामाणिकता तथा उनके सम्बन्ध में नये सूत्र के अन्वेषण के बाद विवाद उठाया है।

डाक्टर साकलिया ने वाल्मीकीय रामायण को पूर्ण प्रामाणिक ग्रन्थ माना है। वे उसे महाकाव्य मानते हैं। परन्तु उसमें वर्णित सेतुबन्ध, हनुमान् द्वारा समुद्र-पार-गमन, अँगूठीप्रसंग, लंका की स्थिति तथा कुछ ऐसी ही घटनाओं

को उन्होंने अप्रमाणित तथा काल्पनिक माना है। इस सम्बन्ध में उनके तर्क अत्यन्त आधारहीन तथा परस्पर विरोधी ज्ञात होते हैं।

यह नियम है कि जिन वस्तुओं का भाव जिस प्रमाण से विदित होता है, उनका अभाव भी उसी प्रमाण से विदित होता है। जिस प्रकार भूतल में घट का भाव आलोकादि-सहकारी-सहकृत मनःसंयुक्त निर्दोष नेत्र से ही विदित होता है, उसी प्रकार घटाभाव भी उसी प्रमाण से विदित होता है। यह स्पष्ट है कि जिसके भाव का ज्ञान कर्णेन्द्रिय से होता है, उसके अभाव का ज्ञान नेत्रेन्द्रिय से नहीं हो सकता। शब्द का ज्ञान कर्णेन्द्रिय से होता है, शब्द के अभाव-ज्ञान के लिए कर्णेन्द्रिय की ही आवश्यकता होती है, किसी अन्य प्रमाण की नहीं।

प्रकृत में राम, सीता, लक्ष्मण, अयोध्या, लंका आदि का ज्ञान आधुनिक प्रत्यक्षानुमान तथा आधुनिक इतिहास से नहीं हो सकता। रामायण एवं पुराणों के अनुसार राम का प्रादुर्भाव करोड़ों वर्ष पूर्व चौबीसवें त्रेता में हुआ है। आधुनिक ऐतिहासिक युग एवं प्रागैतिहासिक काल की सम्पूर्ण अवधि विद्वानों ने छः हजार वर्ष के भीतर ही मानी है। ऐसी स्थिति में राम के चरित्रों के सम्बन्ध में वर्तमान इतिहास का चंचुप्रवेश हो ही नहीं सकता। उस सम्बन्ध में सम्पूर्ण जानकारी अब वाल्मीकि के रामायण से ही प्राप्त हो सकती है।

वाल्मीकि रामायण का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि रामायण का निर्माण कुछ संवाददाताओं या टेलीप्रिण्टरों से भेजे गये समाचारों के आधार पर नहीं हुआ। उसका निर्माण महर्षि वाल्मीकि ने समाधिजनित ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा अतीत-अनागत, वर्तमान, स्थूल, सूक्ष्म, सन्निकृष्ट, विप्रकृष्ट सभी वस्तुओं का साक्षात्कार करके राम, लक्ष्मण, सीता आदि के हसित, भासित, इंगित, चेष्टित आदि सभी व्यापारों का पूर्णरूप से साक्षात्कार किया। महर्षि वाल्मीकि अलौकिक मुनि थे। वे लौकिक गति और दिव्य गति द्वारा भी सब जगह आ जाकर सब वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कर सकते थे। अतः सेतुबन्ध और समुद्रलंघन आदिकों के सम्बन्ध में रामायण के वर्णन की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इनके विषय में वाल्मीकि रामायण ही सबसे बड़ा प्रमाण माना जायेगा।

सेतुबन्धन कल्पना नहीं

रामायण में वर्णित रामेश्वर की स्थापना वर्तमान इतिहास से भी प्रमाणित होती है। सहस्राब्दियों से भारत के कोने-कोने से लोग रामेश्वर का दर्शन करने जाते हैं। गंगोत्री से जल लेकर अति-प्राचीन-काल से धर्मप्राण जनता वहाँ चढ़ाने जाती है। धर्मशास्त्र और वेदान्तशास्त्र की मान्यतानुसार सेतुबन्ध रामेश्वर के दर्शन से ब्रह्महत्याओं के पाप दूर होते हैं। पुराणों में इन बातों का विशद वर्णन है। कूर्मपुराण पूर्व-भाग के बीसवें अध्याय में आये इन श्लोकों से रामेश्वर की महत्ता तथा प्राचीनता स्पष्ट होती है —

'ये त्वया स्थापितं लिंगं द्रक्ष्यन्तीह द्विजातयः।
महापातकसंयुक्तास्तेषां पापं विनश्यतु।। ४।।
अन्यानि चैव पापानि स्नातस्यात्र महोदधौ।
दर्शनादेव लिङ्गस्य नाशं यान्ति न संशयः।।२०।।
यावत्स्थास्यन्ति गिरयो यावदेषा च मेदिनी।
यावत्सेतुश्च तावच्च स्थास्याम्यत्र तिरोहितः।।२१।।

इसी प्रकार के अन्य वचन स्कन्दपुराण तथा अन्य पुराणों में भी मिलते हैं। इन वचनों तथा मान्य ग्रन्थों के प्रमाणों के अतिरिक्त रामेश्वर नाम ही रामेश्वर मूर्ति और मन्दिर का भगवान् राम के साथ असाधारण सम्बन्ध स्थापित करता है। अतः सेतुबन्ध रामेश्वर की घटना वाल्मीकि रामायण द्वारा वर्णित रामेश्वर से भिन्न वस्तु नहीं हो सकती।

सेतुनिर्माण की घटना मात्र कल्पना नहीं है। वाल्मीकि रामायण में सेतु-निर्माण की प्रक्रिया का विस्तार से वर्णन किया गया है। उसका प्रारम्भ, समाप्ति, नाप जोख सब पर रामायण में प्रकाश डाला गया है। वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड के २२ वें सर्ग के ५० से ७२ वें श्लोकों तक प्रतिदिन कितना निर्माण हुआ, कितने दिन में बनकर तैयार हुआ इसका व्योरेवार वर्णन किया गया है। प्रथम दिन १४ योजन, दूसरे दिन २०, तीसरे दिन २१, चौथे दिन २२ एवं पाँचवें दिन २३ योजन के अनुपात से पाँच दिनों में सेतु बनकर पूर्ण तैयार हुआ था। इसकी लम्बाई १०० योजन तथा चौड़ाई १० योजन थी। आधुनिक युग में विभिन्न देशों में निर्मित अत्यन्त विशाल

सेतुओं की उपस्थिति उक्त सेतुबन्धन की घटना को वास्तविक मानने को बाध्य करती है।

समुद्रवर्णन तथा दक्षिण-भारत की स्थिति

वाल्मीकि रामायण में समुद्र की लहरें, जल-जन्तुओं, रत्नों, तटीय वस्तुओं, चन्द्रमा के कारण आने वाले समुद्री, ज्वार-भाटों तथा अन्य समुद्र से सम्बद्ध वस्तुओं का जितना सजीव वर्णन किया गया है, उतना जीवन्त वर्णन किसी भी ऐसे व्यक्ति के द्वारा सम्भव नहीं है जिसने कभी समुद्र देखा ही न हो। उदाहरण के लिए सुन्दर-काण्ड के प्रथम सर्ग में हनुमान् जी द्वारा समुद्रगमन के समय का वर्णन प्रस्तुत है।

'समुत्पतति वेगात्तु वेगात्ते नगरोहिणः।
संहृत्य विटपान् सर्वान् समुत्पेतुः समन्ततः।।१/४५।।'

उन वृक्षों से नाना वर्ण के पुष्पों के समुद्र में गिरने से ऐसा लग रहा था आकाश में सुन्दर-सुन्दर रमणीय तारायें एक साथ उदय हो गयी हों।

'तस्य वेगसमुद्भूतैः पुष्पैस्तोयमदृश्यत।
ताराभिरभिरामाभिरुदिताभिरिवाम्बरम्।।१/५६।।

आकाश-मार्ग से वायु में तैरते हुए हनुमान् जी के दोनों बाहुओं के मध्य शरीर से टकराता हुआ वायुमेघ के समान गर्ज रहा था।

'तस्य वानरसिंहस्य प्लवमानस्य सागरम्।
कक्षान्तरगतो वायुर्जीमूत इव गर्जति।१/६५।।'

समुद्र के जिस-जिस अंश से हनुमान् जी निकलते थे वहाँ-वहाँ समुद्र में तूफान आ जाता था।

यं यं देशं समुद्रस्य जगाम स महाकपिः।
स तु तस्याङ्गवेगेन सोन्माद इव लक्ष्यते।।१/६९।।

महान् वेग वाले हनुमान् महासमुद्र में उठी हुई मेरु और मन्दर के तुल्य बड़ी-बड़ी तरङ्गों को गिनते हुए से चले जा रहे थे।

मेरुमन्दरसंकाशानुद्गतान् स महार्णवे।
अत्यक्रामन्महावेगस्तरङ्गान् गणयन्निव।।१/७३।।

हनुमान् जी के वेगजन्य वायु से समुद्र का जल आकाश में चला जाता था। नीचे तिमि, नक्र, बड़ी-बड़ी मछलियाँ, बड़े-बड़े कच्छप ऐसे दिखाई देते थे जैसे कपड़ा हट जाने पर देह दिखाई देता है।

'तिमिनक्रझषाः कूर्मा दृश्यन्ते विवृतास्तदा।
वस्त्रापकर्षणेनेव शरीराणि शरीरिणाम्।। १/७५।।

समुद्र में रहने वाले सर्पों ने आकाश मार्ग पर हवा में तैरते हुए हनुमान् जी को देखकर गरुड़ समझ लिया।

'क्रममाणं समीक्ष्याथ भुजगाः सागरङ्गमाः।
व्योम्नि तं कपिशार्दूलं सुपर्णमिव मेनिरे।। १/७४।।'

महाबली कपिश्रेष्ठ हनुमान् समुद्र में जिस-जिस मार्ग से निकलते थे उधर-उधर ऐसा लगता था मानो जल के पनाले बह रहे हों।

'येनासौ याति बलवान् वेगेन कपिकुञ्जरः।
तेन मार्गेण सहसा द्रोणीकृत इवार्णवः।। १/८०।।'

इतना ही नहीं श्रीवाल्मीकि ने समुद्र का ऐसा सजीव वर्णन किया है, जैसा आज तक किसी कवि ने किया ही नहीं।

वाल्मीकि रामायण जैसे प्रामाणिक ग्रन्थ में वर्णित वस्तु के विषय में 'अमुक स्थान पर ही होगी' की कल्पना निस्सार है। क्योंकि रामायण में वर्णित वस्तुओं, घटनाओं एवं स्थानों के विषय में तो निश्चितता है। परन्तु आधुनिक लोगों द्वारा तथाकथित अन्वेषणों के विषय में तो अनिश्चय की स्थिति बनी ही हुई है। ऐसी स्थिति में निश्चित प्रमाण को छोड़कर अप्रमाणिकता की ओर दौड़ना, अन्धकारयुक्त मकान में वस्तुओं को खोजने के लिए प्रयास करने के समान है।

महर्षि वाल्मीकि ने भगवान् राम के समुद्र तक पहुँचने के विभिन्न मार्गों का विशद वर्णन किया है। आज भी उसी मार्ग से दक्षिण भारत की तीर्थयात्रा हो जाया करती है। किष्किन्धा में बालि को मारकर राम ने चौमासा किया

था। वह किष्किन्धा दक्षिण भारत में आज किष्किन्धा नाम से ही प्रसिद्ध है। वाल्मीकि रामायण में वर्णित किष्किन्धा की स्थिति को छोड़कर बिना किसी प्रमाण के बेलारी या अन्य किसी स्थान पर उस स्थान की कल्पना वास्तविकता को अस्वीकार करना है। नासिक पञ्चवटी आदि स्थानों के विषय में भी शंकायें उठायी गयी हैं, जो सर्वथा निर्मूल हैं।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि नासिक का सम्बन्ध रामायण की महत्त्वपूर्ण घटना शूर्पणखा की नासिका-छेदन से है। पञ्चवटी भी वहीं है। रामायण में दोनों स्थानों का आस-पास होना प्रमाणित होता है। आधुनिक काल में भी पञ्चवटी और नासिक एक ही स्थान पर हैं। इन स्थानों का वाल्मीकि रामायण के वर्णन से सादृश्य-सम्बन्ध प्रतीत होता है। महाकवि ने रामायण में लगभग दो सौ आठ स्थानों का वर्णन किया है। इनमें से अधिकांश स्थान आज भी दक्षिण भारत में ही हैं। गोदावरी, कृष्णा, वरदा आदि नदियाँ, आन्ध्र, चोल, पाण्ड्य, केरल आदि स्थान दक्षिण भारत में ज्यों के त्यों विद्यमान हैं।

समुद्र-सम्बन्धी पर्वतों का वर्णन भी स्वाभाविक ढंग से हुआ है। वे पर्वत आज भी विभिन्न नामों से विभिन्न रूपों में अवस्थित हैं। वाल्मीकि रामायण में लंका जाते समय हनुमान् का महेन्द्र पर्वत किष्किन्धा (काण्ड ६७, सर्ग श्लोक ३९) तथा लौटते समय अरिष्ट पर्वत (सुन्दरकाण्ड, ५६ सर्ग श्लोक २६) पर चढ़ना बताया गया है।

इसी तरह सुवेल, सह्य, मलय इत्यादि पर्वतों का भी वर्णन किया गया है। इन सब वाल्मीकि रामायण में वर्णित एवं आधुनिक जगत् में प्रसिद्ध वस्तुओं एवं स्थानों में वाल्मीकि रामायण में वर्णित अर्थ ही प्रमाणित होता है। अतः यह कहना तथ्यों से विपरीत है कि महर्षि वाल्मीकि को दक्षिण भारत की भौगोलिक स्थिति एवं उसके रीति-रिवाजों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी।

जहाँ तक दक्षिण में शव गाड़ने की प्रथा का प्रश्न है, आधुनिक इतिहास के आधार पर उसे प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। आधुनिक इतिहास मात्र ६ हजार वर्ष पुराना है, जबकि वाल्मीकि रामायण में वर्णित बाली के शवदाह

की घटना करोड़ों वर्ष पुरानी घटित घटना है। रामायण की संस्कृति, सर्वथा वैदिक संस्कृति है। राम, रावण, बाली इत्यादि वैदिक संस्कृति के व्यक्ति थे। हनुमान् जी भारतीय संस्कृति के अध्येता थे। वैदिक संस्कृति में 'भस्मान्तम् शरीरम्' इत्यादि वेदमन्त्र के अनुसार प्राचीन शवदाह का ही समर्थन किया गया है। अत: बाली एवं रावण के शवदाह का आदेश देना वैदिक संस्कृति के अनुसार सर्वथा उपयुक्त था। शव को गाड़ने की कल्पना कथञ्चित् हो भी तो वह मध्यकाल की बात हो सकती है। इसको दक्षिण भारत का शाश्वतिक धर्म नहीं माना जा सकता।

उधर भारत में भी साधु, संन्यासी, सन्त, महात्मा इत्यादियों को जलाया नहीं जाता, उनकी समाधि बनती है, छोटे एवं असंस्कृत बालकों के शव के साथ भी यही होता है। कहीं-कहीं प्लेग इत्यादि की बीमारी में मरे वयस्क पुरुषों के शवों को भी गाड़ा ही जाता है, उन्हें जलाया नहीं जाता है। हमारे यहाँ शवों के सम्बन्ध में सर्वत्र दहन, खनन एवं प्लावन की परम्परा है। अत: इनमें से किसी एक को किसी भागविशेष की परम्परा नहीं माना जा सकता। जिस प्रकार किसी मुस्लिम बहुल प्रदेश में कब्रों को देखकर यह निर्विवाद निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि यहाँ केवल कब्र ही बनती रही हैं, उसी प्रकार किसी स्थान विशेष पर शव गाड़ने की प्रक्रिया को लेकर यह नहीं कहा जा सकता कि वहाँ पर सदा शव गाड़े ही जाते रहे हैं। यह बात तात्कालिक ऐतिहासिक हो सकती है पर शाश्वतिक ऐतिहासिक नहीं है।

जहाँ तक वाल्मीकि रामायण में वर्णित स्थानों का प्रश्न है, वह अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। वानरराज सुग्रीव ने बन्दरों द्वारा सीता के अन्वेषण के लिए जिन स्थानों का वर्णन किया है, वह अत्यन्त सजीव तथा किसी भी अन्वेषण करने वाले के लिए महत्त्वपूर्ण सामग्री सिद्ध हो सकती है। प्रारम्भ में जो-जो घटनाएँ जिन-जिन स्थानों पर घटित हुई थीं, लंका विजय के पश्चात् लौटते हुये भगवान् राम ने भगवती सीता से उन सभी स्थानों तथा घटनाओं का वर्णन किया है।

'अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः।।२२।।
एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः।।२०।।

सेतुबन्ध इतिख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम्।
एतत्पवित्रं परमं महापातकनाशनम्।।२१।।
एष सेतुर्मया बद्धः सागरे लवणार्णवे।।१७।।
कैलाश शिखराकारे त्रिकूटशिखरे स्थिताम्।
लंकामीक्षस्व वैदेहि निर्मितां विश्वकर्मणा।।३।।
यत्र त्वं राक्षसेन्द्रेण रावणेन हृता बलात्।।४५।।
एषा गोदावरी रम्या प्रसन्नसलिला शुभा।।४६।।

(युद्धकाण्ड, सर्ग १२३)

इसी तरह हिरण्यनाभ पर्वत १८, किष्किन्धा २२, ऋष्यमूक ३८, पम्पा ४०, पर्णशाला आश्रम ४२, ४४, शवरी मिलन स्थल ४१, अगस्त्य एवं शरभंग मुनियों के आश्रम ४६, चित्रकूट ४९, भरद्वाज आश्रम ५१, शृङ्गवेरपुर ५२, इत्यादि स्थानों का वर्णन भगवान् राम ने किया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण में वर्णित स्थान पूर्ण प्रामाणिक हैं। अब भी उन स्थानों की स्थिति तथा तीर्थ की दृष्टि से उनके महत्त्व पर किसी भी मान्य विद्वान् ने अपना मतभेद नहीं व्यक्त किया है।

डाक्टर साकलिया ने वाल्मीकि रामायण को पूर्ण प्रामाणिक माना है फिर उसी ग्रन्थ के किसी अंश को क्यों अप्रमाणिक माना जाय; यह तर्क की दृष्टि से समझ में नहीं आता। ऐसा करना किसी मुर्गी के आधे अंग को पकड़कर खा जाने तथा आधे अंग को अण्डा देने के लिए रख छोड़ने की घटना के समान है।

लंका की स्थिति

ऊपर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि रामायण में वर्णित स्थानों के लिए वाल्मीकि रामायण ही सबसे बड़ा प्रामाणिक ग्रन्थ है। इस रामायण के अनुसार लंका समुद्र से सौ योजन दूर थी। इन लोगों द्वारा पूर्वी मध्य-प्रदेश, दक्षिणी-बिहार, पश्चिमी-बंगाल एवं छोटा नागपुर के आस-पास लंका की स्थिति का जो निर्धारण करना है, उसके लिए अभी कोई प्रमाण भी नहीं है। आज भी लंका के नाम से ही जब प्रसिद्ध द्वीप है तब फिर 'लक्का' को 'लंका' कहा होगा' यह कहने की आवश्यकता ही क्या है ? यह नहीं कहा जा

सकता कि लंका नाम की कोई चीज नहीं थी। वर्तमान श्रीलंका भी हमारे मत में रावण की लंका नहीं है। इस लंका का दूसरा नाम सिलोन भी है। ग्रन्थों में इस सिंघलद्वीप को रावण की लंका से भिन्न बतलाया गया है।

भारतीय पौराणिक भूगोल के अनुसार आज की श्रीलंका महाभारत का सिंघलद्वीप ही है। वास्तविकता यह है कि वाल्मीकि रामायण में वर्णित रावण की लंका सर्वसाधारण के लिए आज लुप्त हो गयी है। वहाँ दीर्घजीवी लोग रहते हैं। वे सामान्य व्यक्ति द्वारा नहीं देखे जा सकते। आधुनिक भूगोलवेत्ता भी यह मानते हैं कि सहस्राब्दियों में भूगोल में पर्याप्त परिवर्तन हो जाया करता है। यह मान्यता बहुसम्मत है कि जहाँ आज हिमालय है, वहाँ पहले समुद्र था। स्वयं डाक्टर साकलिया ने यह माना है कि कुछ टीले ऐसे रहें होंगे जो इस समय आस्ट्रेलिया की ओर बढ़ गये होंगे। अत: रावण की लंका आध्यात्मिक एवं भौगोलिक दोनों कारणों से ही लुप्त हो गयी है। लंका को मध्यप्रदेश अथवा इधर-उधर खोजना एक व्यर्थ का प्रयास है। वाल्मीकि रामायण की कतिपय घटनाओं को अप्रामाणिक मानने के लिए कुछ भी ठोस तर्क प्रस्तुत नहीं किये गये हैं।

जहाँ तक रावण की जाति एवं संस्कृति का सम्बन्ध है, वाल्मीकि रामायण के अनुसार वह वैदिक संस्कृति में दीक्षित कर्मनिष्ठ ब्राह्मण था। वह परम-तपस्वी पुलस्त्य का पौत्र तथा विश्रवा मुनि का पुत्र था। आज भी भारत में पुलस्त्यगाँव प्रचलित है। इन प्रमाणों के रहते हुए भी उसे दूसरी जाति का व्यक्ति मानने की निराधार कल्पना करना सर्वथा अनुचित है।

यह सही है कि वाल्मीकि रामायण की कथाएँ युगों से गायी जाती रही हैं। ऐसी स्थिति में यदि उन कथाओं में प्रमाणविरुद्ध अंश आ जाय तो उसमें कुछ कल्पना का अंश आ सकता है। पर इन कथाओं में ऐसी कोई प्रामाण-विरुद्ध बात नहीं पाई गई है। इसके विपरीत युग से प्रचलित इन कथाओं में आश्चर्यजनक रूप से एकरूपता बनी हुई है। यह तथ्य वाल्मीकि रामायण की प्रामाणिकता के लिए सबसे बड़ा आधार है।

हमारे यहाँ वेदों की आचार्य परम्परा मानी जाती है। गुरु-शिष्य सम्प्रदाय परम्परा से जैसे वेदों की रक्षा होती रही है, वैसे ही गुरु-शिष्य परम्परा से

ही रामायण तथा पुराण की भी रक्षा होती रही है। इसीलिए रामायण में यदि कोई नयी चीज प्रविष्ट हुई तो उसे रामायण का प्रसिद्ध अंश न मानकर क्षेपक की संज्ञा दे दी गयी। वाल्मीकि रामायण के टीकाकारों ने तत्तत्क्षेपकों को न मानने का यही आधार बताया कि 'इनकी सम्प्रदायप्राप्त व्याख्या नहीं है' अतः क्षेपक प्रमाण नहीं माने जा सकते। वस ; इसी सम्प्रदाय-विशेष के कारण ही वाल्मीकि रामायण के मौलिक रूप की रक्षा होती रही है। अतः यह कहना ठीक नहीं है कि वाल्मीकि रामायण की कथाओं में कालान्तर में व्यापक काट-छाँट किया गया। रामायण में महाभारत की चर्चा नहीं है। महाभारत एवं काव्यों में तथा कालिदास, अश्वघोष प्रभृति कवियों ने भी रामायण की चर्चा की है। बौद्ध जातकों तथा जैन ग्रन्थों में रामायण का वर्णन है पर वह प्रामाणिक नहीं। इसलिए इनके आधार पर रामकथाओं के भिन्न रूप बने भी हैं पर वाल्मीकि रामायण में जो इसकी चर्चा है, वही प्रामाणिक है।

अनेक विदेशी विद्वानों ने भी रामकथा के सम्बन्ध में वाल्मीकि रामायण को ही सर्वाधिक प्राचीन एवं प्रामाणिक ग्रन्थ माना है। भारतीय संस्कृति का सन्देशवाहक यह महान् ग्रन्थ रामकथा-सागर में युगों से भारतीयों को गोता लगवाता हुआ आज भी प्रत्येक भारतीय को उसमें गोता लगाकर अपने जीवन को मानवता के उदात्त आदर्शों के अनुसार जीने की पवित्र प्रेरणा दे रहा है। ऐसे प्रामाणिक ग्रन्थ को छोड़कर निराधार कल्पना के सहारे नयी खोजों का दावा करना बौद्धिक स्तर से नीचे उतरने की बात है।

आधुनिक लोग वाल्मीकि रामायण के अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर एवं लंका इन पाँच काण्डों को प्रामाणिक मानते हैं और कहते हैं कि इनमें राम को भगवान् का अवतार नहीं माना गया, पर वाल्मीकि रामायण में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सर्वत्र ही राम को विष्णु का अवतार माना गया है। अतः राम को गुप्तकाल में विष्णु का अवतार कहा गया, यह बात पूर्णतया गलत है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण की सभी घटनाएँ पूर्ण प्रामाणिक हैं। भारतीय संस्कृति, परम्परा तथा धार्मिक एवं आध्यात्मिक

मूल्यों के मूल रहस्य इसी ग्रन्थ में सुरक्षित हैं। मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम को आधुनिक इतिहास की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। किसी मान्य ग्रन्थ के कुछ अंश को प्रामाणिक तथा कुछ को अपनी आधारहीन बातों को सिद्ध न कर सकने की दशा में अप्रामाणिक मानने की दुराग्रही दृष्टि का परित्याग इस समय अत्यावश्यक है। सभी लोगों को धार्मिक तथा आध्यात्मिक ग्रन्थों की बातों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने के प्रयास से अपने को दूर रखने का प्रयास करना चाहिए।

धार्मिक ग्रन्थों के विषय में ऐसी बातों से तनाव एवं विवाद का वातावरण पैदा हो जाता है। हमें ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना है, जिससे इस समय देश में कोई दूसरी समस्या उपस्थित हो। रामायण की घटनाओं के विषय में धर्माचार्यों का निर्णय ही एकमात्र दिशानिर्देशक होना चाहिए।

कालनिर्धारण में पूर्वाग्रह अनुचित

यद्यपि मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद अनादि हैं, अनादिकाल से ही हम लोगों के पूर्वज उन्हें अपौरुषेय मानते आये हैं, मीमांसादि शास्त्रों में इनकी अनादिता अपौरुषेयता बड़े समारोह से सिद्ध की गयी है, तथापि मैक्समूलर, प्रो. वेण्टली, प्रो. वायो, प्रो. वेबर, प्रिंसिपल थीबो, म.म. सुधाकर द्विवेदी, लोकमान्य तिलक, पं. शंकर बालकृष्ण दीक्षित, ज्योतिर्विद् केतकर आदि ने वेदों का निर्माणकाल ६ हजार वर्ष माना है। गोडबोले, लेले, आदि इससे अधिक चौबीस हजार वर्ष आगे बढ़े हैं। पुरातत्त्वज्ञ दासबाबू ८० हजार वर्ष वेद काल मानते हैं।

हड़प्पा मोहनजोदड़ों आदि की खुदाई में उपलब्ध एक के नीचे दूसरा, तीसरा नगर निर्माण और उसमें मिली हुई वस्तुओं की छानबीन करने से उसका काल १५ हजार वर्ष प्राचीन बताया जाता है। इससे भारतीय संस्कृति अति प्राचीन सिद्ध होती है। इसी से उसके साहित्य की भी प्राचीनता सिद्ध होती है। साहित्य कितना प्राचीन है? इसका निर्णय भी उन्हीं साहित्य-ग्रन्थों के अन्तःसाक्ष्य एवं घटनाओं से होना चाहिए।

वेद-काल-निर्णय के लेखक पण्डित दीनानाथ चुलेट के अनुसार कात्यायन श्रौतसूत्र, पारस्कर गृह्यसूत्र एवं शुल्वसूत्र के भाष्यकार कर्काचार्य का काल

वर्तमान से पन्द्रह हजार वर्ष पूर्व है। कहा जाता है कि वसन्त-सम्पात (वसन्त ऋतु का आगमन) सर्वदा एक नक्षत्र पर नहीं होता, किन्तु सभी नक्षत्रों पर वसन्त गति से घूमता हुआ पच्चीस हजार आठ सौ वर्षों अथवा २६ हजार वर्षों में उसी नक्षत्र पर आ जाता है, जहाँ से प्रारम्भ हुआ है। जैसे यदि इस उत्तराभाद्रपद के द्वितीय चरण पर वसन्तसम्पात हुआ है तो २६ हजार वर्ष बाद फिर उत्तराभाद्रपद नक्षत्र के द्वितीय चरण पर आयेगा। बावन हजार वर्ष पहले भी उसी पर वसन्तसम्पात निश्चित है। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार पूर्व पश्चिमी आदि दिशाओं के निर्णय के लिए समस्थल पर बारह अंगुल का शङ्कु खड़ा करके बारह अंगुल की रस्सी से शङ्कु के चारों ओर वर्तुलाकार लकीर बनाने से वृत्त बनता है। उसका नाम है त्रिज्यावृत्त। दिन के दूसरे पहर में (अर्थात् नव बजे के आस-पास) जब शङ्कु की छाया का अग्रभाग त्रिज्या वृत्त के भीतर आने के लिए त्रिज्या वृत्त के जिस अंश का स्पर्श करता है वही है पश्चिमदिशा। इसी तरह तीसरे पहरे के अन्त में शङ्कु की छाया का अग्रभाग त्रिज्यावृत्त को पार करने के लिए त्रिज्यावृत्त के जिस अंश का स्पर्श करता है वह पूर्वदिशा। त्रिज्यावृत्त के दोनों छायास्पर्शी अंशों को मिलाने वाली रेखा का नाम पूर्व-पश्चिम-रेखा है।

साल भर में छः-छः महीने बाद दो दिन ऐसे आते हैं जिनमें सूर्य का उदय और अस्त इस पूर्व-पश्चिम-रेखा पर होता है। उदय होने का क्रम शनैः शनैः दक्षिण की ओर बढ़ते-बढ़ते जिस दिन पूर्व-पश्चिम-रेखा पर उदयास्त होता है उस दिन शरद्-सम्पात (अर्थात् शरद् ऋतु का प्रारम्भ) और क्रमशः उत्तर की ओर बढ़ते-बढ़ते जिस दिन उदयास्त पूर्व पश्चिम-रेखा पर होता है उस दिन वसन्त-सम्पात (वसन्त का आरम्भ) होता है।

'समे शंकुं निखाय शंकुसम्मितया रज्ज्वा मण्डलं परिलिख्य यत्र लेखयोः शंक्वग्रछाया निपतति तत्र शंकुं निहन्ति सा प्राची' (शुल्ब सूत्र २) इस सूत्र का भाष्य करते हुए कर्काचार्य लिखते हैं — "दक्षिणायने तु चित्रां यावदादित्य उपसर्पति उदगयने स्वातीमेति, विषुवतीये त्वहनि चित्रा स्वात्योर्मध्य एवोदयः। अतस्तन्मध्ये शंकुगतैवच्छाया भवति। एवञ्च सति अहरन्तरेषु सैव प्राची न भवतीत्यत्रोच्यते। 'तं प्राञ्चमुद्धरति' इत्यनेन प्राच्युद्धरणे कृते अनेकाहसाध्येऽपि कर्मणि तदेवोद्धरणमित्यहरन्तरे दोषो न भवति।"

अर्थात् सूर्य चित्रा पर जब तक रहते है तब तक दक्षिणायन रहता है। स्वाती पर पहुँचने पर उत्तरायण हो जाता है। अर्थात् स्वाती नक्षत्र पर पहुँचने तक दक्षिणायन रहता है। जब सूर्य चित्रा को पार कर जाता है और 'स्वाती पर नहीं पहुंचता ; इस चित्रा स्वाती के मध्य के काल में ठीक पूर्व-पश्चिम-रेखा पर उदयास्त होता है। इस कारण उस दिन द्वादशांगुल शंकु की छाया से सधी हुई पूर्व पश्चिम की रेखा शंकु को पार कर जाती है। अन्य दिनों में भी शंकु की छाया के अग्र भाग के मण्डल में प्रवेश-निर्गम-चिह्नों से पूर्व-पश्चिम-रेखा होती है, किन्तु वह शंकु को पार नहीं करती। साल भर में जिस दिन सूर्य चित्रा स्वाती के मध्य में आता है, उस दिन के सूर्योदय से साधित की हुई प्राची अन्य दिनों में भी उपयुक्त होती है। कर्काचार्य के इस कथन से यह सिद्ध होता है कि उनके समय में वसन्तसम्पात ठीक चित्रा स्वाती के मध्य में हुआ करता था। क्योंकि वसन्तसम्पात के दिन ही सूर्य का उदयास्त पूर्व-पश्चिम-रेखा पर होता था।

यद्यपि उस दिन शरद् सम्पात भी कहा जा सकता है तथापि इस प्रसङ्ग में 'उदगयने स्वातीमुपैति' (उत्तरायण में स्वाती पर पहुँचते हैं) इस वचन के अनुसार उत्तरायण के प्रसङ्ग में वसन्त-सम्पात ही हो सकता है। इसके अतिरिक्त इसी प्रसङ्ग में 'विषुवतीये त्वहनि चित्रास्वात्योर्मध्य एवोदयः' विषुवत् वाले दिन चित्रा स्वाती के मध्य में ही उदय होता है) इस भाष्य के अनुसार 'विषुवतीय' शब्द से भी यही प्रतीत होता है कि चित्रा स्वाती के मध्य में सूर्य के उदय-अस्त का दिन वसन्तसम्पात ही है। क्योंकि जब उस दिन दिन-रात समान होते हैं उसी को विषुवतीय दिन कहा जाता है। यह शरद् सम्पात और वसन्त-सम्पात में ही होता है। कारण उस दिन क्रान्ति-वृत्त (जिस पर सूर्य चन्द्र आदि ग्रह घूमते हैं) पर घूमते-घूमते सूर्य विषुवत् वृत्त (दैनिक भ्रमण के लिए निश्चित मार्ग) पर आता है। उत्तर-गोलार्ध से दक्षिण-गोलार्ध पर जाते समय सूर्य के विषुवत् वृत्त पर पहुँचने पर शरद् सम्पात और दक्षिण-गोलार्ध से उत्तर-गोलार्ध की ओर जाते समय सूर्य के विषुवत् वृत्त में पहुँचने पर वसन्त-सम्पात होता है। पर यह स्थिर नहीं होता, सूर्य विषुवत् वृत्त में एक स्थान पर न काटकर कुछ पीछे हटते हुए सम्पात पर आता है। इसी को अयन-चलन कहा जाता है। इसीलिए वर्तमान की अयन गति के गणित

से वसन्त-सम्पात को अपने स्थान पर आने में लगभग २६ हजार वर्ष बीतते हैं। तथा च उत्तर की ओर बढ़ते हुए सूर्य के उदय होने के क्रम में जो विषुव-दिन होता है वह वसन्त-सम्पात का ही माना जाता है, शरद्-सम्पात का नहीं।

इस विचार के अनुसार कर्काचार्य का समय पन्द्रह हजार वर्ष प्राचीन है। फिर कात्यायन श्रौतसूत्रादिकों का समय उससे अति प्राचीन होगा। वेदों का समय क्या कहा जाय, वे तो अनादि-काल से प्रवृत्त हैं। वेदार्थ के उपबृंहण के लिए रामायण और महाभारत की रचना हुई है। अतः उनके निर्माण-काल के विषय में विचार करना आवश्यक है। मनु, व्यास और जैमिनि की दृष्टि में तो मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद अनादि और अपौरुषेय हैं। स्वयं वेद की दृष्टि में भी वेद नित्य और अनादि हैं। जैसा कि इन वचनों से स्पष्ट होता है। 'वाचा विरूप नित्यया' (ऋ.सं., ८/७५/६), 'पूर्वे पूर्वेभ्यो वच एतदूचुः' (तै. ब्रा., ३/१२/९/२), 'अत एव च नित्यत्वम्' (ब्र.सू., १/३/२९), 'शब्द इति चेन्नातः प्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्' (ब्र.सू., १/३/२८), 'आख्याप्रवचनात्' (जै.सू., १/१/३०)।

अतः किसी के कालनिर्धारण में एक सीमा-निर्धारण करके उसी दायरे में सोचना बुद्धिमानी नहीं है।

उपसंहार

इस प्रकार इस छोटे से लेख में श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण और श्रीमहाभारत संहिता का काल-निर्णय आस्तिकों की दृष्टि से किया गया है। जो वस्तु जिसकी होती है उसका रहस्य भी उसी पद्धति से जानने पर मिलता है, अन्यथा जो कुछ किया जाता है उसमें विपरीत फल ही निकलता है। वेदशास्त्र आदि हम लोगों की अनादि वंशपरम्परा से अनादि अपौरुषेय ही घोषित आ रहे हैं। यदि उद्धरण वाली पद्धति ही लें तो श्रीमन्महाभारत में वाल्मीकीय रामायण का उद्धरण है, यथा—

अपि चायं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि।
न हन्तव्यः स्त्रिय इति यद्ब्रवीषि प्लवङ्गम।। ६७।।
सर्वकालं मनुष्येण व्यवसायवता सदा।
पीडाकरममित्राणां यत्स्यात्कर्त्तव्यमेव तत्।। ६८।।

(म.भा., द्रोणपर्व, १४३)

यह श्लोक श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के युद्धकाण्ड में ८१ सर्ग का २८वाँ है।

'रामायणेऽतिविख्यातः श्रीमान् वानरपुङ्गवः।'

(म.भा., वनपर्व, १४७/११)

इसी प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में मनुस्मृति का उद्धरण है।

'श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रवत्सलौ।
गृहीतौ धर्मकुशलैस्तथा तच्चरितं मया।। ३०।।
राजभिर्धृतदण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा।। ३१।।
शासनाद्वापि मोक्षाद्वा स्तेनः पापात्प्रमुच्यते।
राजा त्वशासन् पापस्य तदवाप्नोति किल्विषम्।। ३२।।'

(श्री वा.रा., कि.का., १८)

कुछ हेर-फेर से ये श्लोक मनुस्मृति में मिलते हैं।

'शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते।
अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्विषम्।।३१६।।
राजभिः कृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा।।३१८।।

(मनुस्मृति, अध्याय ८)

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण चौबीसवें त्रेता में भगवान् श्रीराम के अवतार के समय बना है और मनुस्मृति इस वैवस्वत मनु के पहले जबकि ६ मनु और बीत चुके हैं। इसे सर्वप्रथम स्वायम्भुव मनु के उपदेश से भृगु ने निर्माण किया है। उद्धरण की प्रक्रिया के अनुसार मनुस्मृति का काल सृष्टि के प्रारम्भ

से ही होने के कारण वर्तमान संवत् २०३५ तक १ अरब ९५ करोड़ ८८ हजार ७९ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

वस्तुत: दैव तथा असुर दो प्रकार के भूतसर्ग बराबर ही चला करते हैं तथा सृष्टि-प्रक्रिया भी पूर्ववत् ही चला करती है। यह श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है —

'भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।'

(श्री म.भा.गी., ८/१९)

अत: आस्तिकता- नास्तिकता दोनों ही सिद्धान्त अनादिकाल से ही प्रचलित हैं। नया कोई सिद्धान्त नहीं है। इसी दृष्टि से श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में बुद्ध का नाम आना असमञ्जस नहीं है। वेदों में भी 'कथमसतस्सज्जायेत्' आदि कहकर इस असद्वाद (शून्यवाद) का खण्डन किया है।

इस समय श्रीकृष्णद्वैपायन द्वारा निर्मित पुराण उपलब्ध हैं, किन्तु इसके पहले भी ब्रह्मा जी द्वारा प्रोक्त पुराण थे। उनकी चर्चा वेदों और वाल्मीकीय रामायण में है।

अत: सभी वेद और वेदानुसारी आर्ष धर्मग्रन्थ भगवद्रूप ही हैं —

'काव्यालापाश्च ये केचित् गीतकान्यखिलानि च।
शब्दमूर्तिधरस्यैतद्वपुर्विष्णोर्महात्मनः।।'

(वि.पु., १/२२/८४)

वे सभी सृष्टि के आरम्भ से ही प्रवृत्त है। पाश्चात्त्यों द्वारा उठायी गयी प्रक्रिया अधकचरी है। उस प्रक्रिया से तत्त्वनिर्णय नहीं हो सकता।

महाभारत युद्ध

महाभारत युद्ध कब प्रारम्भ हुआ और कब उसका अन्त हुआ? भीष्मपितामह कितने दिनों तक शरशय्या पर आसीन रहे? अभिप्राय यह कि उनका निर्वाण संग्राम की समाप्ति और शरशय्या की प्राप्ति के कितने दिन बाद हुआ, ये सब विचारणीय प्रश्न है।

महाभारत और उसके रचनाकाल के सम्बन्ध में आधुनिक विचारकों ने बड़े ही समारोह के साथ विचार प्रारम्भ किया है। उनकी प्रामाणिकता पर महाभारत के सर्वथा अनुरूप विचार अपेक्षित है।

यह स्मरण रखना आवश्यक है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने धर्मभूमि- कुरुक्षेत्र में युद्धारम्भ से पूर्व विषादग्रस्त अर्जुन को जो उपदेश दिया, वह श्रीमद्भगवद्गीता नाम से महाभारत में प्रसिद्ध है। अतः महाभारत युद्ध के आरम्भ की और गीता-जयन्ती की तिथि एक ही होनी चाहिए।

श्रीमहाभारतकार ने 'महाभारत युद्ध के पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर के राज्यकाल में' कलि का प्रवेश माना है —

'नाधर्म्यमभवत् तत्र सर्वो धर्मरुचिर्जनः।
बभूव नरशार्दूल यथा कृतयुगे तथा।।
कलिमासन्नमाविष्टं निर्वास्य नृपनन्दनः।
भ्रातृभिः सहितो धीमान् बभौ धर्मबलोद्धतः।।'

(अश्वमेध., १४/१९-२०)

''धर्मराज युधिष्ठिर के राज्य में कहीं कोई अधर्मयुक्त कार्य नहीं होता था। सब लोग धर्मविषयक रुचि रखते थे। पुरुष सिंह ! जैसे सत्ययुग में समस्त प्रजा धर्मपरायण रहती थी, उसी प्रकार उस समय द्वापर में भी हो गयी थी।''

''कलियुग को समीप आया देख बुद्धिमान नृपनन्दन युधिष्ठिर उसका निर्वासन कर भाइयों के साथ धर्मबल से अजेय होकर शोभा पाने लगे।''

भीमसेन द्वारा अनीतिपूर्वक आघात से दुर्योधन के पराजित होने पर क्रुद्ध श्रीबलराम को समझाते हुए 'प्राप्तं कलियुगं विद्धि प्रतिज्ञां पाण्डवस्य च।' (शल्य., ६०/२५) श्रीकृष्ण भगवान् के इस वचन से युद्धकाल में कलियुग के प्रवेश का प्रभाव विदित होता है। साथ ही—

अन्तरे चैव सम्प्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्।
समन्तपञ्चके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः।।

(महा.,आदि., २/१३)

इन श्लोकों के अनुशीलन से महाभारत-युद्ध के वर्ष का संकेत प्राप्त है।

युद्धारम्भ और युद्धान्त के सन्दर्भ में सप्ताह के सात दिनों में किसी भी दिन का उल्लेख महाभारत में नहीं है, अतः दिन की दृष्टि से विचार असम्भव है।

'शरदन्ते हिमागमे' (उद्योग., ८३/६,७), 'निवृत्तमात्रे त्वयन उत्तरे वै दिवाकरे।' (शान्ति., ४७/३), 'विनिवृत्ते दिनकरे प्रवृत्ते चोत्तरायणे।' (अनुशासन., १६६/१४)।

इन स्थलों में हेमन्त एवं दक्षिणायन का उल्लेख स्पष्ट ही 'अयन' को सिद्ध करता है।

युद्ध के सन्दर्भ में शरद् का अन्त, हेमन्त का प्रारम्भ, कौमुद (कार्तिक) मास का उल्लेख निश्चय ही उपयोगी है।

'पौर्णमासीं च कार्तिकीम्' (भीष्म., २/२३), 'कृष्णचतुर्दशीम्' (भीष्मपर्व, ३/३३), 'अमावास्यां त्रयोदशीम्' (भीष्मपर्व, ३/३२), 'सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति' (उद्योगपर्व, १४२/१८), 'त्रिभाग-शेषः पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति' (अनुशासनपर्व, १६७/२८) में कृष्ण एवं शुक्ल पक्ष का स्पष्ट उल्लेखपक्षनिर्णय में उपयोगी है। इन्हीं वचनों से तिथि का भी निवेश प्राप्त होता है। रेवती, ऐन्द्र (ज्येष्ठ), श्रवण, पुष्य, अनुराधा नक्षत्र के उल्लेख भी तिथिनिर्णय के साथ ही तिथि निर्णय में भी उपयोगी हैं।

'सप्तमाच्चापि दिवसात्' (उद्योगपर्व, १४२/१८), 'चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च' (शल्यपर्व, ३४/६), 'अष्टपञ्चाशतं रात्र्यः' (अनुशासन., १६७/२७), 'अष्टादशाभवत्' (आदि., २/३८१) आदि वचन दिनसंख्या के द्योतक हैं।

इस तरह महाभारत युद्धकाल का निर्णय करते समय वर्ष, अयन, मास, पक्ष, तिथि, नक्षत्र और दिन संख्या की दृष्टि से विचार कर्तव्य है।

पृष्ठभूमि

भगवान् श्रीकृण ने पाण्डवों के दूत और नायक होकर हेमन्त ऋतु के शुभागमन पर कौमुद मास (कार्तिक) रेवती नक्षत्र में उपप्लव्य नगर से हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान किया —

ततो व्यपेततमसि सूर्ये विमलवद्गते।
मैत्रे मुहूर्ते सम्प्राप्ते मृद्वर्चिषि दिवाकरे।।
कौमुदे मासि रेवत्यां शरदन्ते हिमागमे।
स्फीतसस्यसुखे काले कल्पः सत्त्ववतां वरः।।

(महा., उद्योगपर्व, ८३/६,७)

"उसके बाद जब रात्रि का अन्धकार दूर हुआ और निर्मल आकाश में सूर्यदेव का उदय होने पर उनकी कोमल किरणें सब ओर फैल गयीं, कार्तिक मास के रेवती नक्षत्र में मैत्र-नामक मुहूर्त उपस्थित होने पर सत्त्वगुणी पुरुषों में श्रेष्ठ एवं समर्थ श्रीकृष्ण ने यात्रा प्रारम्भ की। उन दिनों शरद् ऋतु का अन्त और हेमन्त का आरम्भ हो रहा था। सब ओर पर्याप्त उपजी हुई खेती लहलहा रही थी।"

यद्यपि उपप्लव्य से चलकर रात्रिविश्राम वृकस्थल में वर्णित है (उद्योगपर्व, ८४/१५-२६)। वृकस्थल उन पाँच गाँवों में एक था, जिनके मिल जाने पर पाण्डव बिना युद्ध के भी सन्तुष्ट हो सकते थे —

अविस्थलं वृकस्थलं माकन्दीं वारणावतम्।
अवसानं भवत्वत्र किञ्चिदेकं च पञ्चमम्।।

(उद्योग., ३१/१९)

पुनः रात्रि बीतने पर हस्तिनापुर पहुँचने का उल्लेख है (उद्योग., ८५/१६-१८; ८६/१), फिर विदुर जी के घर में रात्रिविश्राम का वर्णन है (उद्योग., ९१/४१)। तत्पश्चात् प्रातः से सायं तक कौरव-सभा में असफल शान्तिवार्ता का निरूपण है। उसी दिन श्रीकुन्तीदेवी से पाण्डवों के लिए युद्ध की आज्ञा प्राप्त कर तथा कर्ण को एकान्त में कौन्तेय बताकर उनसे पाण्डवपक्ष में सम्मिलित होने के अनुरोध का वर्णन है। अन्त में कर्ण के अस्वीकार करने पर भीष्म, द्रोण, शल्य एवं दुर्योधन के प्रति युद्धारम्भसम्बन्धी सन्देश की घोषणा है —

सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति।
संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम्।।

(उद्योग., १४२/१८)

"आज से सातवें दिन अमावस्या होगी। उसके देवता इन्द्र कहे गये है। उसी में युद्ध प्रारम्भ किया जाय।"

तत्पश्चात् उपप्लव्य आकर पाण्डवों और समुपस्थित राजाओं को सन्देश सुनाकर रात्रिविश्राम का वर्णन है।

इस तरह उपप्लव्य से चलकर पुनः उपप्लव्य लौट आने तक तीन दिनों का ही विवरण प्राप्त होने पर भी पाण्डवों से भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा कथित 'प्रयाध्वं वै कुरुक्षेत्रं पुष्योद्येति पुनः पुनः' (उद्योग., १५०/३) इस दुर्योधनवाक्य से यह सिद्ध होता है कि रेवती से पुष्य नक्षत्र तक शान्तिवार्ता के सन्दर्भ में भगवान् श्रीकृष्ण के व्यतीत हुए। दुर्योधन की सेना ने असफल शान्तिवार्ता के दिन ही कुरुक्षेत्र के लिए प्रस्थान किया। साथ ही रात्रिविश्राम के अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण के निम्नलिखित वचन से यह सिद्ध होता है कि दूसरे दिन भी पुष्य नक्षत्र का योग था —

न कुर्वन्ति वचो मह्यं कुरवः कालनोदिताः।
निर्गच्छध्वं पाण्डवेयाः पुष्येण सहिता मया।।

(शल्य., ३५/१०)

अस्तु! पाण्डवसेना ने भी 'पुष्य' में ही कुरुक्षेत्र के लिए प्रस्थान किया।

इस तरह 'रेवती हस्तिनापुर के लिए प्रस्थाननक्षत्र' और 'पुष्य सैन्यनिर्याण-दिवस' सिद्ध होता है।

श्रीभगवान् के 'सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति, ... तामाहुः शक्रदेवताम्' इस सन्देश से इस तथ्य का प्रकाश होता है कि इन्द्रदेवतासम्बन्धी ज्येष्ठा नक्षत्र में मार्गशीर्ष की अमावास्या थी। अतः उससे पूर्व श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर-प्रस्थान के दिन कार्तिक शुक्ल एकादशी या द्वादशी और सैन्यनिर्याण के दिन पञ्चमी तिथि सिद्ध होती है। यद्यपि 'इन्द्रस्य चित्रा' (तैत्तरीय ब्राह्मण, १/५/१) इस श्रुति के अनुसार गौणीवृत्ति से चित्रा ऐन्द्र नक्षत्र है और ज्यौतिषशास्त्र की प्रसिद्धि के अनुसार कृत्तिका के अग्नि और ज्येष्ठा के इन्द्र स्वतन्त्र देवता हैं। परन्तु तिथि के अनुगुण आद्योपान्त नक्षत्रोपलब्धि को देखते हुए प्रसंगानुसार इन्द्र ज्येष्ठा के अधिपति के रूप में ग्राह्य हैं। स्वयं श्रीवेदव्यास को भी इस सन्दर्भ में यही मत मान्य है —

श्वेतो ग्रहः प्रज्वलितः सधूम इव पावकः।
ऐन्द्रं तेजस्वि नक्षत्रं ज्येष्ठामाक्रम्य तिष्ठति।।

(भीष्मपर्व, ३/१६)

"केतु नामक उपग्रह धूमयुक्त अग्नि के समान प्रज्वलित हो, इन्द्र-देवतासम्बन्धी तेजस्वि-ज्येष्ठा नक्षत्र पर जाकर स्थित है।"

अब क्योंकि पुष्य के बाद दशमे स्थान पर ज्येष्ठा है। इसलिए पञ्चमी से अमावास्या तक दो नक्षत्र एवं दो तिथियों का क्षय असम्भव परिलक्षित होता है। अतः 'सप्तमाच्चापि' का अभिप्राय 'आज के सातवें दिन' की अपेक्षा 'सप्ताह बाद' (दशवे दिन) ग्राह्य है।

यद्यपि 'इन्द्रस्य चित्रा' इस वचन में त्वष्टा ही परमैश्वर्यसम्पन्न होने के कारण इन्द्र कहे गये हैं, जैसा कि श्रीमत्सायणाचार्य विरचित माधवीय वेदार्थप्रकाश के अनुशीलन से सिद्ध है —

पूर्वं चित्रा नक्षत्रस्वामी योऽपमिन्द्र उक्तः सोऽयं त्वष्टा परमैश्वर्ययोगादिन्द्र उच्यते। अन्यत्र 'त्वष्टा नक्षत्रसंभ्येति चित्राम्' इति मन्त्राम्नानात्।

तथापि अमावास्या में चित्रा मानने पर भी आगे श्रवण में युद्धान्त सिद्ध करने के लिए मार्गशीर्ष शुक्ल में पूर्णिमा से पूर्व एक तिथि की वृद्धि, पूर्णिमा से युद्धारम्भ तथा पौष शुक्ल द्वितीया को युद्धान्त मानना होगा। इस दृष्टि से यद्यपि पुष्य से श्रवणोत्तर श्रवण तक श्रीबलदेवजी के बयालीस दिन हो जायेंगे, परन्तु चौदहवें दिन का रात्रियुद्ध पौषकृष्ण त्रयोदशी को सिद्ध होगा। अतः उत्तररात्रि में तीन या चार मुहूर्त रात्रि शेष रहने पर चन्द्रोदय का वर्णन बाधित-सा होगा।

यद्यपि श्रीवेदव्यासजी के निम्नलिखित वचनों से यह सिद्ध होता है कि दो तिथियों का क्षय होने के कारण कृष्णपक्ष तेरह दिनों का था —

चतुर्दशीं पञ्चदशीं भूतपूर्वां च षोडशीम्।
इमां तु नाभिजानेऽहमावास्यां त्रयोदशीम्।
चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीम्।।

(भीष्मपर्व, ३/२)

"एक तिथि का क्षय होने पर चौदहवें दिन, तिथिक्षय न होने पर पन्द्रहवें दिन और एक तिथि की वृद्धि होने पर सोलहवें दिन अमावास्या होना तो पहले देखा गया है, परन्तु इस पक्ष में तेरहवें दिन यह अमावास्या आ गयी है, ऐसा पहले भी कभी हुआ है, इसका मुझे स्मरण नहीं है। इस एक ही मास में तेरहवें दिन चन्द्र और सूर्य दोनों ग्रस्त हुए।।"

भगवान् श्रीकृष्ण के वचन से भी यही सिद्ध होता है —

एवं पश्यन् हृषीकेशः सम्प्राप्तं कालपर्ययम्।
त्रयोदश्याममावास्यां तान् दृष्ट्वा प्राब्रवीदिदम्।।
चतुर्दशी पञ्चदशी कृतेयं राहुणा पुनः।
प्राप्ते वै भारते युद्धे प्राप्ता चाद्य क्षयाय नः।।

(महा., मौसल., २/१८, १९)

"इस तरह काल का उलट-फेर प्राप्त हुआ देख और तेरहवें दिन अमावास्या का संयोग जान भगवान् श्रीकृष्ण ने सब लोगों से कहा — वीरों ! इस समय राहु ने फिर चतुर्दशी को ही अमावास्या बना दिया है। महाभारत युद्ध के समय जैसा योग था, वैसा ही आज भी है। यह सब हम लोगों के विनाश का सूचक है।।"

परन्तु प्रश्न उठता है कि मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष त्रयोदश दिनों का था या पौष कृष्ण ?

अलक्ष्यः प्रभया हीनः पौर्णमासीं च कार्तिकीम्।
चन्द्रोऽभूदग्निवर्णश्च पद्मवर्णे नभस्तले।।

(भीष्मपर्व, २/२३)

मांसवर्षं पुनस्तीव्रमासीत् कृष्णचतुर्दशीम्।।

(भीष्मपर्व, ३/३३)

उक्त स्थल में कार्तिकी पूर्णिमा के पश्चात् कृष्ण चतुर्दशी का उल्लेख है, साथ ही उसके लिए 'आसीत्' शब्द का प्रयोग है; अतः मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष की चतुर्दशी का ही संकेत प्राप्त श्लोक में हुआ है, ऐसा सभी मानते है। अब क्योंकि श्रीकृष्णवचन से यह सिद्ध है कि चतुर्दशी को राहु ने पञ्चदशी

(अमावास्या) बना दिया और 'इमां तु नाभिजानेहममावास्यां त्रयोदशीम् (भीष्मपर्व, ३/३२)' यह व्यासवचन भी है, अतः कृष्णचतुर्दशी का अभिप्राय अमावास्या ही ग्राह्य है।

चन्द्रादित्यावुभौ ग्रस्तावेकाह्वा हि त्रयोदशीम्।
अपर्वणि ग्रहं यातौ प्रजा संक्षयमिच्छतः।।

(भीष्म., ३/२८)

चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीम्।

(भीष्म., ३/३२)

इस व्यासवचन के सूक्ष्म अनुशीलन से एक ही मास में चन्द्रग्रहण के बाद तेरहवें दिन सूर्यग्रहण सिद्ध होता है। ऐसा मानने में ही 'एकमासीं त्रयोदशीम्' की सार्थकता है। अतः 'अलक्ष्यः प्रभया हीनः पौर्णमासीं च कार्तिकीम्' से चन्द्रग्रहण का और मांसवर्षं पुनस्तीव्रमासीत् कृष्णचतुर्दशीम्' से सूर्यग्रहण का संकेत प्राप्त होता है। मार्गशीर्ष की पूर्णिमा और पौषकृष्ण अमावास्या या चतुर्दशी का उल्लेख न होने के कारण भी मार्गशीर्ष कृष्ण ही तेरह दिनों का पक्ष सिद्ध होता है।

यदैकमासे ग्रहणं जायते शशिसूर्ययोः।
शस्त्रकोपैः क्षयं यान्ति तदा भूपाः परस्परम्।।

(शीघ्रबोध, ४/१६१)

'जो सूर्य चन्द्र का एक मास में ग्रहण हो तो राजा आपस में शस्त्र द्वारा नाश को प्राप्त हों।।'

एकपक्षे यदा यान्ति तिथयश्च त्रयोदश।
त्रयस्तत्र क्षयं यान्ति वाजिनो मनुजा गजाः।।

(शीघ्रबोध, ४/१७६)

'जो एक पक्ष में तेरह तिथियाँ हो, तो हाथी, घोड़े और मनुष्य तीनों का नाश हो।'

भारतसावित्री और श्रीनीलकण्ठाचार्य के मत का अनुशीलन करने पर भी इसी तथ्य का प्रकाश होता है कि मार्गशीर्ष कृष्ण तेरह दिनों का पक्ष था।

सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति।
संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम्।।

(उद्योग., १४२/१८)

युद्धारम्भ के सम्बन्ध में जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण का उक्त वचन मान्य है, वहाँ युद्धान्त के सम्बन्ध में श्रीबलराम जी का निम्नलिखित वचन प्रमाण है —

चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै।
पुष्येण सम्प्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः।।
शिष्ययोर्वै गदायुद्धं दृष्टुकामोऽस्मि माधव।

(शल्यपर्व, ३४/६-६-१/२)

"आप लोगों से मिलकर तीर्थयात्रा के उद्देश्य से चले हुए आज मुझे बयालीस दिन हो गये। पुष्य नक्षत्र में चला था और श्रवण में पुनः वापस आया हूँ।। माधव ! मैं अपने दोनों शिष्यों का गदायुद्ध देखना चाहता हूँ।"

सैन्य-निर्याण के दिन श्रीबलराम जी भगवान् श्रीकृष्ण और पाण्डवों से मिलकर तीर्थयात्रा के उद्देश्य से उपप्लव्य से चलकर सरस्वती के तट पर रुक गये। उन्होंने द्वारका से यात्रा के उपयुक्त ब्राह्मण, अग्नि और अन्य सामग्रियों को मंगवाकर अनुराधा नक्षत्र में तीर्थयात्रा प्रारम्भ की—

युयुधानेन सहितो वासुदेवस्तु पाण्डवान्।
रौहिणेये गते शूरे पुष्येण मधुसूदनः।।

(शल्यपर्व, ३५/१५)

"सात्यकि-सहित भगवान् श्रीकृष्ण ने पाण्डवों का पक्ष लिया। रोहिणीनन्दन शूरवीर श्रीबलराम जी के चले जाने पर मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को आगे करके पुष्य नक्षत्र में कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान किया।।"

ततो मन्युपरीतात्मा जगाम यदुनन्दनः।
तीर्थयात्रां हलधरः सरस्वत्यां महायशाः।।
मैत्रनक्षत्रयोगे स्म सहितः सर्व यादवैः।
आश्रयामास भोजस्तु दुर्योधनमरिन्दमः।।

(शल्यपर्व, ३६/१४-१५)

श्रीबलदेव जी गदायुद्ध के समय श्रवण नक्षत्र में देवर्षि नारद से प्रेरित होकर आये। इस तरह पुष्य से श्रवणोत्तर श्रवण नक्षत्र तक उनके बयालीस दिन हो गये।

अत: युद्धारम्भ के सम्बन्ध में भगवान् श्रीकृष्ण का और युद्धान्त के सम्बन्ध में श्रीबलराम जी का वचन प्रमाण मानकर विचार होना चाहिए अथवा किन्हीं एक के ही वचन को प्रमाण मानकर विचार होना चाहिए, यह मुख्य प्रश्न है।

गदायुद्ध ही अन्तिम युद्ध था। उसी दिन सौप्तिक-संहार भी हुआ। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है। अत: युद्धान्त में श्रीबलदेव-वचन अकाट्य प्रमाण है। 'पुष्य से चलकर आज श्रवण में आया हूँ। आज बयालीस दिन हो रहे है। मैं दोनों शिष्यों का गदायुद्ध देखना चाहता हूँ।' यह वचन व्यावहारिक स्थिति का ज्यों-का-त्यों अनुवाद है। अत: गौणार्थक कदापि नहीं हो सकता। प्रसङ्गानुसार उसी दिन गदायुद्ध और सौप्तिक-संहार सिद्ध भी है। अत: युद्धान्त में श्रीबलदेव-वचन प्रमाण है। इसका कोई बाधक वचन भी नहीं है।

अठारह दिन

अब विचारणीय विषय यह है कि ज्येष्ठा से श्रवणोत्तर श्रवण बत्तीसवें स्थान पर है। 'अठारह दिनों तक युद्ध हुआ' महाभारत में एवं भारत-सावित्री में आद्योपान्त ऐसा ही उल्लेख है, लोक-प्रसिद्धि भी ऐसी ही है। अब यदि श्रवण को युद्धान्त और लगातार अठारह दिनों तक युद्ध मानकर विचार करें तो मृगशिरा से युद्धारम्भ सिद्ध होता है। श्रीनीलकण्ठाचार्य के अनुसार मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशी मृगशिरा से पौषशुक्ल प्रतिपदा श्रवण तक युद्धकाल निश्चित होता है।

परन्तु ऐसा मानने पर 'सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति। संग्रामो युज्यतां तस्यां ....' (उद्योग., १४२/१८) भगवान् श्रीकृष्ण का यह वचन अत्यन्त गौण सिद्ध होता है। क्योंकि मार्गशीर्ष अमावास्या ज्येष्ठा से मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशी 'मृगशिरा' पन्द्रहवें स्थान पर है। पुष्य नक्षत्र में चली हुई सेना ज्येष्ठा में कुरुक्षेत्र पहुँची, ऐसा भी नहीं कह सकते। करोड़ों की

संख्या में उपस्थित उभयपक्ष के सैनिक लगभग तीन सप्ताह में शिविरादि का निर्माण और युद्धभूमि का परिष्कार कर पाये, ऐसा भी नहीं कह सकते। साथ ही ज्येष्ठा से श्रवण तक बत्तीस दिनों में ही एक-एक दिन अवकाश देकर युद्ध हुआ, यह भी सम्भव नहीं। 'संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम्' इस श्रीकृष्णवचन के रहते हुए मृगशिरा से रोहिणी तक युद्ध के अनारम्भ का प्रामाणिक हेतु प्रकाश में लाना चाहिए। अथवा अवकाश और अनवकाशयुक्त युद्ध की कोई प्रामाणिक रूपरेखा का अनुसन्धान करना चाहिए।

श्रीभीष्मपितामह के नेतृत्व में दश दिनों तक, द्रोणाचार्य के नेतृत्व में पाँच दिनों तक, कर्ण के नेतृत्व में दो दिनों तक तथा शल्य के नेतृत्व में आधा दिन युद्ध हुआ। उसके बाद भीमसेन और दुर्योधन का गदायुद्ध हुआ। फिर सौप्तिक-संहार हुआ। इस तरह अठारह दिन तक युद्ध हुआ अथवा अठारह दिनों में महाभारत युद्ध पूर्ण हुआ।

परिरक्ष्य स सेनां ते दशरात्रमनीकहा।
जगामास्तमिवादित्यः कृत्वा कर्म सुदुष्करम्।।

(भीष्मपर्व, १३/११)

युद्धं कृत्वा दिनान् पञ्च द्रोणो हत्वा वरूथिनीम्।
ब्रह्मलोकं गतो राजन् ब्राह्मणो वेदपारगः।।

(द्रोणपर्व, २०१/१००)

युद्धं कृत्वा महद्घोरं पञ्चाहानि महाबलः।
ब्राह्मणो निहतो राजन् ब्रह्मलोकमवाप्तवान्।।

(द्रोणपर्व, २०२/१५५)

ततः पार्थं समासाद्य पतङ्ग इव पावकम्।
पञ्चत्वमगमत् सौतिर्द्वितीयेऽहनि दारुणः।।

(आश्वमेधिक., ६०/२१)

अवधीन्मद्रराजानं कुरुराजो युधिष्ठिरः।
तस्मिंस्तदार्द्धदिवसे कृत्वा कर्म सुदुष्करम्।।

(आश्वमेधिक., ६०/२४)

अथापराह्णे तस्याह्नः परिवार्य सुयोधनः।
ह्रदादाहूय युद्धाय भीमसेनेन पातितः।।

(शल्यपर्व, १/१२)

भारतसावित्री ने भी इसी तथ्य का प्रकाश किया है —

दिनानि दश भीष्मेण भारद्वाजेन पञ्च च।
दिनद्वये तु कर्णेन शल्येनार्धदिनं तथा।।
दिनार्धं तु गदायुद्धमेतद्भारतमुच्यते।
एवमष्टादशं हन्ति अक्षौहिण्यो दिनक्रमात्।।

(भारतसावित्री, ७९-८०)

'अठारह अक्षौहिणी सेना और अठारह दिनों तक युद्ध' महाभारत की यह प्रसिद्धि महाभारत में ही एक श्लोक में सन्निहित है —

अष्टादश समाजग्मुरक्षौहिण्यो युयुत्सया।
तन्महादारुणं युद्धमहान्यष्टादशाभवत्।।

(आदिपर्व, २/३८१)

अवकाश-सहित

श्रवण युद्धान्त अथवा लगातार अठारह दिनों तक युद्ध वाली गणनाओं की समीक्षा करने से पूर्व अवकाश के औचित्य और अनौचित्य का निर्णय परमावश्यक है।

मूल के अनुशीलन से यह सिद्ध है कि श्रीद्रोणाचार्य के नेतृत्व से लेकर दुर्योधनवध तक लगातार युद्ध हुआ। द्रोणाचार्य ने अभिमन्युवध तक प्रतिज्ञापूर्वक युद्ध किया। अभिमन्यु वध से क्रुद्ध अर्जुन ने जयद्रथवध की अमोघ प्रतिज्ञा की। जयद्रथ के पश्चात् क्रुद्ध दुर्योधन ने रात्रियुद्ध की घोषणा की।

उसी रात्रियुद्ध में घटोत्कच के वध से शोकार्त धर्मराज युधिष्ठिर जब कर्ण से युद्ध करने का निश्चय कर जीवन को संकट में डालकर आगे बढ़ रहे थे, तब श्री व्यासदेव ने उन्हें ऐसा करने से रोका और दिव्यदर्शिता के अमोघ प्रभाव से आशीर्वाद देते हुए कहा —

भ्रातृभिः सहितः सर्वैः पार्थिवैश्च महात्मभिः।
कौरवान् समरे राजन् प्रतियुद्ध्यस्व भारत।।
पञ्चमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति।

(द्रोणपर्व, १८३/६४,६५)

"भरतवंशी नरेश ! तुम अपने समस्त भाइयों तथा महामना भूपालों के साथ जाकर समरभूमि में कौरवों का सामना करो। तात ! आज के पाँचवें दिन सारी पृथिवी तुम्हारी हो जायगी।"

श्रीवेदव्यास जी का उक्त वचन तभी सार्थक हो सकता है जब उसके बाद युद्ध लगातार सम्भव हो।

तमिस्रा रात्रि के घोर अन्धकार को देखकर तथा प्रचण्ड युद्ध में उभयपक्ष को श्रमित और निद्रित देखकर प्राज्ञ पार्थ ने रात्रियुद्ध को कुछ समय के लिए विश्राम दिया। सबों ने युद्धभूमि में ही विश्राम किया। उत्तररात्रि में चन्द्रोदय के प्रकाश में पुनः युद्धारम्भ हुआ। बस, द्रोणाचार्य के नेतृत्व का अन्तिम दिन आ गया —

तस्य त्वहानि चत्वारि क्षपा चैकास्यतो गता।
तस्य चाह्नस्त्रिभागेन क्षयं जग्मुः पतत्त्रिणः।।

(द्रोणपर्व, १९१/९)

"उनके निरन्तर बाण चलाते चार दिन और एक रात का समय बीत चुका था। उस दिन के (पन्द्रह भागों में) तीन ही भाग में उनके सभी बाण समाप्त हो गये।"

उक्त वचन से तो स्पष्ट ही है कि श्रीद्रोणाचार्य के नेतृत्व में अवकाश की बात कौन कहे, एक रात्रि-युद्ध भी हुआ। जो अवकाशयुक्त युद्ध मानते है, उन्हें भी चौदहवें और पन्द्रहवें दिन का युद्ध लगातार मानना पड़ता है।

अब रही भीष्माचार्य के नेतृत्व में एक-एक दिन अवकाश की बात। पितामह के नेतृत्वकाल में सायंकाल चौथे दिन के अवहार के समय उनका वचन है —

तन्न मे रोचते युद्धं पाण्डवैर्जितकारिभिः।
घुष्यतामवहारोऽद्य श्वो योत्स्यामः परैः सह।।

(भीष्मपर्व, ६४/७०)

"अतः विजय से सुशोभित होने वाले पाण्डवों के साथ इस समय युद्ध करना मुझे नहीं रुचता। आज युद्धविराम घोषित कर दिया जाय, कल सबेरे हम विपक्षियों से युद्ध करेंगे।"

साथ ही अवहार के बाद रात्रि बीतने पर पुनः नित्य ही युद्धारम्भ का वर्णन भी भीष्माचार्य के नेतृत्व में अवकाशयुक्त युद्ध को अप्रामाणिक सिद्ध करता है।

भीष्मपतन के बाद अवकाशयुक्त युद्ध इसलिए भी असम्भव है, क्योंकि ऐसा मानने पर शेष आठ दिन का युद्ध पितामह के शरशय्या के पन्द्रह दिन सिद्ध करेगा।

फिर भी विचारकों के सम्मुख यह गम्भीर प्रश्न उपस्थित होता है कि मार्गशीर्ष अमावास्या ज्येष्ठा से मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशी रोहिणी तक युद्ध को अनारम्भ रखना भी अनुमानसिद्ध ही है। इस अनुमान में लगातार अठारह दिनों तक युद्ध और श्रवण में युद्धान्तरूप वचन प्रमाण है। इसी तरह यह भी कहा जा सकता है कि जैसे युद्धान्त में श्रीबलदेव वचन प्रमाण है, वैसे ही युद्धारम्भ में श्रीकृष्णवचन प्रमाण है। न तो श्रीकृष्णवचन के कारण बलदेव-वाक्य बाधित होने योग्य है और न बलदेववचन के कारण श्रीकृष्णवचन ही बाधित होने योग्य है। साथ ही एक-एक दिन अवकाशयुक्त युद्ध भी असम्भव है। इधर द्रोणाचार्य के नेतृत्व से लेकर युद्धान्त तक प्रतिज्ञाबद्ध दैनिक युद्ध का उल्लेख है, अतः इस अवधि में भी अवकाशयुक्त युद्ध की धारणा असिद्ध है। अस्तु ! श्रीभीष्माचार्य के नेतृत्व में लगातार युद्ध की सामान्य सिद्धि, श्रीकृष्ण भगवान् के विशेष वचन के बल पर बाधित होने के योग्य माना जा सकता है। क्योंकि जैसे श्रीकृष्ण भगवान् के उपप्लव्य से हस्तिनापुर प्रस्थान और पुनः हस्तिनापुर से उपप्लव्य आने तक केवल तीन दिनों का विवरण प्राप्त है,परन्तु वह सामान्य विवरण प्रयाध्वं वै कुरुक्षेत्रं पुष्योद्येति पुनः पुनः' इस श्रीकृष्णमुखनिर्गत दुर्योधनवाक्य से बाधित हो जाता है, वैसे ही भीष्माचार्य

के नेतृत्व में दैनिक-युद्ध-सम्बन्धी सामान्य वचन श्रीकृष्णवचन से बाधित होकर उसका अभिप्राय 'आगामी युद्धकाल अर्थात् एक दिन अवकाश के बाद' ग्राह्य है।

परन्तु ऐसा मानने पर भी मार्गशीर्ष अमावस्या ज्येष्ठा में युद्धारम्भ नहीं सिद्ध होता। कदाचित् इस दिन सैन्य शिक्षण और युद्धधर्म मर्यादा निर्धारण मानें तो भी मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा को युद्धारम्भ नहीं सिद्ध होता, क्योंकि ऐसा मानने पर मार्गशीर्ष पूर्णिमा आर्द्रा में आठवें दिन का युद्ध सिद्ध होगा। महाभारत के अनुसार उस दिन प्रदोष-काल में अन्धकार होना चाहिए —

रजनीमुखे सुरौद्रे तु वर्तमाने महाभये।
अवहारं ततः कृत्वा सहिताः कुरुपाण्डवाः।।
न्यविशन्त यथाकालं गत्वा स्वशिविरं तदा।।

(महा., भीष्म., ९६/८०)

'फिर महाभयानक तथा अत्यन्त रौद्र रूप वाले प्रदोषकाल में कौरव तथा पाण्डव एक साथ अपनी सेनाओं को लौटाकर यथासमय शिविर में जा पहुँचे और विश्राम करने लगे।।'

साथ ही मार्गशीर्ष शुक्ल द्वितीया पूर्वाषाढ़ा से युद्धारम्भ मानने पर यद्यपि आठवें दिन के युद्ध में पौषकृष्ण द्वितीया प्राप्त होती है,परन्तु उस दिन भी प्रदोषकाल में, 'रजनीमुखे सुरौद्रे तु वर्तमाने महाभये' यह लक्षण आंशिक ही घटित होता है।

साथ ही ऐसा मानने पर भी दो तिथियों और नक्षत्र को या तो पौषकृष्ण को त्रयोदश दिनों का पक्ष मानकर पूर्ण करना होगा अथवा मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्थी श्रवण से युद्धारम्भ मानकर द्रोणाभिषेकपर्यन्त अवकाशयुक्त युद्ध मानना होगा। मार्गशीर्ष कृष्ण में ही दो तिथियों का क्षय सम्भव और पौषकृष्ण में असम्भव सिद्ध होने पर उक्त रीति से श्रवण से श्रवण तक युद्धकाल मान्य होगा।

परन्तु भीष्मपतन के बाद अवकाश के दिन शरशय्या में सम्मिलित होने के कारण युद्ध तुल्य सिद्ध होंगे। अतः मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्थी श्रवण में युद्धधर्म-मर्यादा-निर्धारण और शुक्ल पञ्चमी धनिष्ठा में गीता जयन्ती एवं

युद्धारम्भ मानना उपयुक्त है। पौषकृष्ण चतुर्थी में आठवें दिन का युद्ध, पौषकृष्ण अष्टमी चित्रा में भीष्मपतन और उसके पश्चात् पौषशुक्ल प्रतिपदा श्रवण तक अनवरत युद्ध उपयुक्त परिलक्षित होता है। इस दृष्टि से पौषकृष्ण द्वादशी में जयद्रथवध तथा विभागशेष उत्तर रात्रि में चन्द्रोदय और युद्धारम्भ एवं पौषशुक्ल प्रतिपदा में युद्धान्त सिद्ध होता है।

इस पक्ष में मार्गशीर्ष अमावास्या 'ज्येष्ठा' में स्वस्तिवाचन आदि माङ्गलिक कृत्य और सीमानिर्धारण आदि तथा मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा मूल नक्षत्र से मार्गशीर्ष शुक्ल तृतीया उत्तराषाढ़ा तक सैन्यशिक्षण सिद्ध होता है।

'मांसवर्षं पुनस्तीव्रमासीत् कृष्णचतुर्दशीम्' (भीष्म., ३/३३) इस व्यासवचन में आसीत् का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि मार्गशीर्ष कृष्ण चतुर्दशी (अमावास्या) के बाद श्रीव्यास भगवान् ने धृतराष्ट्र को उद्‌बोधित करते हुए संजय को दिव्य-दृष्टि प्रदान किया। पुनः —

ततः पूर्वापरे सैन्ये समीक्ष्य भगवानृषिः।
सर्ववेदविदां श्रेष्ठो व्यासः सत्यवतीसुतः।।
भविष्यति रणे घोरे भरतानां पितामहः।
प्रत्यक्षदर्शी भगवान् भूतभव्यभविष्यवित्।।
वैचित्रवीर्यं राजानं सरहस्यं ब्रवीदिदम्।
शोचन्तमार्तं ध्यायन्तं पुत्राणामनयं तदा।।

(भीष्म., २/१-३)

चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीम्।
अपर्वणि ग्रहेणैतौ प्रजाः संक्षपयिष्यतः।।

(भीष्म., ३/३३)

उक्त व्यासवचनों में निर्दिष्ट 'भविष्यति रणे घोरे' तथा 'प्रजा संक्षपयिष्यत:' उक्तियों से युद्ध के अनारम्भ की सूचना मिलती है। साथ ही —

पतन्त्युल्काः सनिर्घाताः शक्राशनिसमप्रभाः।
अद्य चैव निशां व्युष्टामनयं समवाप्स्यथ।।

(भीष्म., ३/३५)

उक्त वचन से 'रात्रि बीतने पर आज ही' युद्धारम्भ का निर्देश प्राप्त होता है। इस तथ्य की पुष्टि संजय के निम्नलिखित वचन से भी होती है—

यथा स भगवान् व्यासः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत्।
तथैव सहिताः सर्वे समाजग्मुर्महीक्षितः।।

(भीष्म., १७/१)

उक्त अवकाशयुक्त गणना के अनुसार 'चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै।' इस बलदेववाक्यस्थ बयालीस दिनों की सिद्धि इस प्रकार सम्भव है —

क्योंकि कार्तिकी पूर्णिमा कृत्तिका या रोहिणी में सम्भव है। अतः उपप्लव्य से श्रीहरि का हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान कार्तिक शुक्ल द्वादशी को न मानकर कार्तिक शुक्ल एकादशी रेवती को माना जाय ? इस दृष्टि से कार्तिकी पूर्णिमा रोहिणी में सिद्ध होगी। अब क्योंकि मार्गशीर्ष कृष्ण में दो तिथियों का क्षय था, अतः पञ्चमी से पूर्व एक तिथि का क्षय मान कर मार्गशीर्ष कृष्णपञ्चमी पुष्य में भगवान् श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर से उपप्लव्य आगमन सिद्ध होता है। पुनः रात्रि विश्राम के अनन्तर पञ्चमी और पुष्य के योग में ही श्रीबलदेवजी का शुभागमन और प्रस्थान एवं तत्पश्चात् कुरुक्षेत्र के लिए सैन्यनिर्याण सिद्ध होता है। अब क्योंकि इस पक्ष में चतुर्दशी को राहु ने अमावास्या बना दिया था, अतः पञ्चमी के बाद एक तिथि का क्षय मानकर युद्धान्त पौषशुक्ल प्रतिपदा तक इकतालीस दिन होते हैं। अतः मार्गशीर्ष शुक्ल में युद्धारम्भ से पूर्व एक तिथि की वृद्धि मान लेने पर तिथिक्षय की पूर्ति और श्रीबलदेवजी के अभीष्ट दिनों की सिद्धि सम्भव है।

रही ज्येष्ठा से उत्तराषाढ़ा तक सैन्यशिक्षण की प्रामाणिकता की बात! भीष्मपर्व के आरम्भ में सैन्य-मर्यादा-निर्धारण का उल्लेख है। परन्तु उस अध्याय का नाम पुष्पिकानुसार सैन्यशिक्षण है। अतः इससे अनुमान लगाना चाहिए कि इन चार दिनों में युद्धक्षेत्र-निर्धारण, मंगलाचरण और सैन्य-शिक्षणादि कृत्य सम्पन्न हुए। जैसे यज्ञ का पूर्वरूप भी यज्ञारम्भ के अन्तर्गत ही मान्य है, वैसे ही युद्धारम्भ का पूर्वरूप भी युद्धारम्भ के अन्तर्गत ही मान्य होना चाहिए।

ज्यौतिष के अनुसार श्रवण एवं धनिष्ठा ऊर्ध्वमुख नक्षत्र हैं, अतः इनमें युद्धारम्भ उपयुक्त है —

उत्तरात्रितयं पुष्यो रोहिण्यार्द्राश्रुतित्रयम्।
ऊर्ध्ववक्रो गणो ज्ञेयो नक्षत्राणां मनीषिभिः।।
प्रासादच्छत्रगेहानि प्राकार-ध्वज-तोरणम्।
नानाभिषेकमश्वं च कुर्यादूर्ध्वमुखे गणे।।

(शीघ्रबोध, २/८१-८२)

'तीनों उत्तरा, पुष्य, रोहिणी, आर्द्रा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा ये नक्षत्र पण्डितों को ऊर्ध्वमुख जानना चाहिए। महल, क्षत्र, घर, परकोटा, ध्वजा तोरण, अभिषेक और घोड़े आदि की सवारी ऊर्ध्वमुख में उत्तम है।।'

अब विचारणीय विषय यह है कि जैसे मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी, त्रयोदशी या चतुर्दशी में युद्धारम्भ मानने पर 'संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम्' यह भगवद्वचन बाधित होता है; वैसे ही मार्गशीर्ष शुक्ल पञ्चमी को युद्धारम्भ मानने पर भी होता है। अतः भीष्मपितामह के नेतृत्वकाल में अवकाशयुक्त युद्ध मानने की क्या उपयोगिता है, जबकि 'श्वो योत्स्यामः परैः सह' (भीष्मपर्व, ६४/७०) यह भीष्मवचन भी बाधित ही हो रहा है ?

इसका उत्तर यह है कि जैसे आहुतिप्रदानरूप मुख्य यज्ञ नवग्रहादि-पूजनरूप कृत्यों का सहिष्णु होता है, वैसे ही अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग रूप मुख्य युद्ध चार दिनों का अतिरिक्त व्यवधान सह सकता है। क्योंकि युद्ध-मर्यादा-रूप व्यवधान तो व्यासवचन से ही सिद्ध है। शेष व्यवधान 'सैन्य शिक्षण और स्वस्तिवाचनादि' संकेतों से अनुमेय है।

अवकाश-दिन से पूर्व यदि कार्यालय का कोई अधिकारी सेवकों से कहे — "अब आज कार्यालय बन्द कर दो, शेष कार्य 'कल' करूँगा" तो उसके इस वचन का अभिप्राय जैसे एक दिन बाद समझा जायगा, यदि इसी शैली में भीष्मजी का उक्त सामान्य वचन मान्य हो तब तो यह संगति उपयुक्त है। अन्यथा भीष्मप्रतिज्ञा की तरह भीष्म-वचन ही पूर्ण सत्य रहने दिया जाय और अठारह दिन लगातार युद्ध मान कर श्रीनीलकण्ठाचार्य की शैली में श्रीबलभद्रवाक्य के सर्वथा अनुगुण श्रवण नक्षत्र और उसके अनुकूल तिथि से सत्रह दिन पूर्व मार्गशीर्ष शुक्ल मृगशिरा नक्षत्र में ही युद्धारम्भ उपयुक्त माना जाय ?

रही 'सप्तमाच्चापि दिवसात्' के अनुसार पुष्य के सातवें दिन ज्येष्ठा नक्षत्र की बात ? तो पहले की तरह 'ज्येष्ठा' को ऐन्द्र नक्षत्र मानकर तथा मार्गशीर्ष कृष्ण पञ्चमी से अमावास्या तक एक तिथि एवं उसके अनुगुण एक नक्षत्र का क्षय मानकर पुष्य से नवें स्थान पर ज्येष्ठा है, अतः 'सप्तमाच्चापि' का 'एक सप्ताह बाद अर्थात् मार्गशीर्ष कृष्ण पञ्चमी पुष्य के पश्चात् नवें दिन' ऐसा भावार्थ ग्रहण करना चाहिए।

अवकाश-रहित

अब प्रतिदिन लगातार अठारह दिनों तक युद्ध को प्रमाण मानकर मार्गशीर्ष शुक्ल दशमी, द्वादशी या त्रयोदशी तक युद्ध के अनारम्भ की दृष्टि से विचार प्रारम्भ किया जाता है —

नवीन पञ्चाङ्गों के अनुसार तथा प्रचलित प्रसिद्धि के अनुसार गीता-जयन्ती मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी को सिद्ध होती है।

नक्षत्रगणना के अनुसार मार्गशीर्ष पूर्णिमा मृगशिरा या आर्द्रा में सम्भव है, अतः शुक्ल एकादशी को अश्विनी और भरणी नक्षत्र होना चाहिए। अश्विनी से युद्धारम्भ मानने पर श्रवण तक बाईस दिन होते है। कदाचित् पौषकृष्ण में दो तिथियों का तथा उनके अनुगुण दो नक्षत्रों का क्षय मानें तो भी दो तिथि और नक्षत्र अवशिष्ट रहते हैं। इसलिए बीस दिनों तक युद्ध सिद्ध होता है, जो कि अनवकाश वाले पक्ष में सर्वथा अमान्य है।

कदाचित् अश्विनी में ध्वजारोहण, स्वस्तिवाचन और सैन्यशिक्षण तथा युद्धमर्यादा-निर्धारणादि मानें और भरणी में ही एकादशी मानकर, इसी दिन युद्धारम्भ मानें एवं पौष कृष्ण को ही त्रयोदश दिनों का पक्ष मानें तो भी एक तिथि और नक्षत्र अवशेष रहते हैं, इसलिए उन्नीस दिनों तक युद्ध सिद्ध होता है। कदाचित् पौष अमावस्या को ही युद्धान्त और श्रवण का योग मानें तो भी श्रीबलदेव जी के बयालीस दिन न होकर चालीस दिन ही सिद्ध होते हैं।

अतः पौषकृष्ण को त्रयोदश दिनों का पक्ष और मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी से पौष अमावास्या तक महाभारत-युद्धकाल मानना केवल लगातार अठारह दिनों की प्रसिद्धि को देखते हुए उचित प्रतीत होता है। परन्तु महाभारत में

जो रेवती, पुष्य, अनुराधा, ज्येष्ठा, मघा और श्रवण के रूप में नामोल्लेखपूर्वक नक्षत्र-निर्देश प्राप्त है उसके विरुद्ध मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी वाली गणना होने के कारण आंशिक सत्य है, पूर्ण सत्य नहीं।

इसके अतिरिक्त इस द्वितीय पक्ष की भी श्रीनीलकण्ठाचार्यादि के समय में प्रसिद्धि नहीं थी, अत: अर्वाचीन प्रसिद्धि ही सिद्ध होती है। अल्प-प्रामाणिकता और अर्वाचीन प्रसिद्धि की अपेक्षा ठोस प्रामाणिकता और पूर्वाचार्यों की अनुस्मृति का आलम्बन अधिक उत्कृष्ट होता है।

हेमन्ते प्रथमे मासे शुक्लपक्षे त्रयोदशी।
प्रवृत्तं भारतं युद्धं नक्षत्रं यमदैवतम्।।

(भारत-सावित्री ६४)

"हेमन्त ऋतु के प्रथम मास में शुक्लपक्ष की त्रयोदशी को यमदैवत नक्षत्र में भारतयुद्ध प्रारम्भ हुआ।।"

'भारत-सावित्री' का यह वचन नक्षत्र-गणना की दृष्टि से महाभारत के प्रतिकूल है। यद्यपि हेमन्त ऋतु का प्रथम मास मार्गशीर्ष होता है। 'शरदन्ते हिमागमे' (उद्योग., ८३/७) इस पूर्वोक्त वचन के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण ने शरद् ऋतु के अन्त और हेमन्त के शुभागमन पर उपप्लव्य से हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान किया था। रेवती नक्षत्र को देखते हुए तथा ज्येष्ठा में मार्गशीर्ष की अमावास्या को देखते हुए 'कौमुदे मासि रेवत्यां शरदन्ते हिमागमे' का अर्थ पूर्वरीत्या मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी सिद्ध होता है। मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष में दो तिथियों का क्षय सिद्ध होने वे कारण कार्तिक शुक्ल एकादशी से प्रारम्भ होने वाली हेमन्त ऋतु का प्रथम मास शुक्ल त्रयोदशी को पूर्ण होता है। अत: 'हेमन्ते प्रथमे मासे शुक्लपक्षे त्रयोदशी' यह सावित्री-वचन सर्वथा सत्य है। परन्तु 'प्रवृत्तं भारतं युद्धं नक्षत्रं यमदैवतम्' इस वचन के सम्बन्ध में यह विचार उपस्थित होता है कि यमदेवता-सम्बन्धी प्रसिद्ध नक्षत्र भरणी है। भरणी से श्रवण इक्कीसवें स्थान पर है। इधर भारत-सावित्री को मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशी से पौष अमावास्या तक ही युद्ध मान्य है। अस्तु ! अठारह दिनों का लगातार युद्ध भरणी से प्रारम्भ होने पर मूल नक्षत्र में पूर्ण होना चाहिए। मूल में पौष अमावास्या मानने पर पुनर्वसु में पौषपूर्णिमा भी उचित

ही है। परन्तु तिथिक्षय अमान्य होने पर तीन नक्षत्रों के क्षय की कल्पना भी सर्वथा अशक्य है। अत: मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी की तरह ही मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशी वाला पक्ष भी महाभारत के विपरीत सिद्ध होता है।

कहा जा सकता है कि क्योंकि श्रवण से मृगशिरा सत्रहवें स्थान पूर्व है, अत: यम का अर्थ युग्म करके मृगशिरा को ही यमदेवता-सम्बन्धी नक्षत्र मानकर युद्धारम्भ माना जाय। परन्तु ऐसा मानने पर दो विघ्न उपस्थित होते हैं। प्रथम यह कि मृगशिरा के चन्द्रमा अधिपति हैं। यम से युग्म का यकार और मकार की दृष्टि से पाठ साम्य होने पर भी यम से चन्द्र का पाठत: अथवा अर्थत: साम्य नहीं सिद्ध होता। यदि श्रीनीलकण्ठाचार्य के शब्दों में मृगशिरा का पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध राशिगत दो विभाग कर पूर्वार्द्ध में वृष और उत्तरार्द्ध में मिथुन का चन्द्र माना जाय, वृष के शुक्र और मिथुन के बुध अधिपति होने के कारण आसुर-शक्ति की पराजय और देवशक्ति का अभ्युदय-सूचक मृगशिरा में ही युद्धारम्भ माना जाय तो नक्षत्र के अनुगुण चतुर्दशी या पूर्णिमा तिथि भी मान्य होगी। साथ ही यह प्रश्न उपस्थित होगा कि राशिगत पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध भेद तो पुनर्वसु आदि नक्षत्रों का भी हो सकता है, फिर मृगशिरा का ही क्यों माना जाय ? द्वितीय आपत्ति यह है कि स्वयं भारत-सावित्री को भी यमदैवत नक्षत्र — 'मृगशिरा' अमान्य है ? 'फाल्गुन्यां निहतो भीष्म: कृष्णपक्षे च सप्तमी।' इस भारत-वचन से तो यही सिद्ध होता है कि फाल्गुनी नक्षत्र में भीष्म-पतन हुआ। पूर्वाफाल्गुनी भरणी के बाद ठीक नवें स्थान पर है। अत: ऐसा तभी सम्भव है जब भरणी में युद्धारम्भ हो। मृगशिरा में युद्धारम्भ मानने पर चित्रा में भीष्म पतन होना चाहिए। अत: दस दिनों के भीतर ही तीन-तीन नक्षत्रों की हानि सर्वथा असम्भव है।

अस्तु ! युद्धारम्भ के सम्बन्ध में ही नहीं; अभिमन्युवध, जयद्रथवध, भगदत्तवध, वृषसेनवध-सम्बन्धी भारत-सावित्री का दिन भी मूल के विरुद्ध है। महाभारत के अनुसार अभिमन्युवध तेरहवें दिन के युद्ध में होना चाहिए न कि ग्यारहवें दिन, इसी तरह जयद्रथवध चौदहवें दिन होना चाहिए न कि बारहवें दिन, इसी प्रकार भगदत्तवध बारहवें दिन होना चाहिए न कि तेरहवें दिन, वृषसेनवध सत्रहवें दिन होना चाहिए न कि सोलहवें दिन।

श्रीनीलकण्ठाचार्य

श्रीमहाभारत के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीनीलकण्ठाचार्य के मत में महाभारत युद्ध मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशी मृगशिरा में आरम्भ होता है और पौष शुक्ल प्रतिपदा श्रवण में अन्त होता है। तिथि, नक्षत्र, मासगणना की दृष्टि से यह पक्ष सर्वोत्तम है।

यथा स भगवान् व्यासः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत्।
तथैव सहिताः सर्वे समाजग्मुर्महीक्षितः।।
मघाविषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत।
दीप्यमानाश्च सम्पेतुर्दिवि सप्त महाग्रहाः।।

(भीष्म., १७/१-२)

यद्यपि प्रथम श्लोक युद्धारम्भ-सम्बन्धी है और उससे संलग्न होने के कारण द्वितीय श्लोक का अर्थ मघा नक्षत्र में युद्धारम्भ व्यक्त होता है। परन्तु श्रवण से पूर्व तेरहवें स्थान पर मघा होने के कारण मघा से युद्धारम्भ सभी मतों में अमान्य है। यही कारण है कि श्रीनीलकण्ठाचार्य ने मघा का अभिप्राय मृगशिरा ग्रहण किया है।

अथवा 'मघाविषयगः सोमः' का कूटार्थ इस प्रकार ग्राह्य है — मघा के पाँचवें स्थान पूर्व मृगशिरा है, उसके देवता सोम हैं। अतः सोमदेवता-सम्बन्धी नक्षत्र में युद्धारम्भ हुआ। विषय अर्थात् पाँच और विषयगः अर्थात् पाँचवाँ स्थान।

अथवा प्रथम श्लोक से इसका सम्बन्ध न माना जाय, क्योंकि आगे के श्लोक व्यक्रम ढंग से पृथक्-पृथक् घटनाओं के प्रतिपादक है। अतः स्वतन्त्र रीति से ऐसा मानना उचित है कि पुष्य में कुरुक्षेत्र के लिए चली सेना के मघा में कुरुक्षेत्र पहुँचने का संकेत ग्रन्थकार ने प्रस्तुत श्लोक में प्रदान किया है। इस दृष्टि से 'दिवि सप्त महाग्रहाः' का तात्पर्य यह है कि मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष ही त्रयोदश दिनों का पक्ष था और उसी में सप्तमहाग्रही का योग भी था।

श्रीबलराम जी के बयालीस दिनों की पूर्ति मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में युद्धारम्भ से पूर्व एक तिथि की वृद्धि मानकर सम्भव है।

युद्धारम्भ में श्रीनीलकण्ठाचार्य को प्रमाण मानने वाले महाराष्ट्र के भारताचार्य चिन्तामणिराव वैद्य आदि भी हैं।

ज्योतिर्विद् पण्डित देवकीनन्दन खण्डेलवाल लिखित 'महाभारत-युद्ध काल-निर्णय' (पृष्ठ ८) तथा 'भारतीय काल-गणना' (पृष्ठ २६) में युद्धारम्भ-नक्षत्र भरणी माना है। भारत-सावित्री ने भी भरणी में ही युद्धारम्भ माना है।

श्री अभ्यंकर के अनुसार युद्ध मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशी रोहिणी में प्रारम्भ हुआ। भीष्मपतन कृष्ण ६ हस्त में हुआ, अभिमन्युवध कृष्ण ९ विशाखा में हुआ, जयद्रथवध तथा रात्रियुद्ध कृष्ण १० अनुराधा में, द्रोणवध कृष्ण ११ ज्येष्ठा में, कर्णवध कृष्ण १३ पूर्वाषाढ़ा में, शल्यवध कृष्ण १४ उत्तराषाढ़ा में तथा उसी दिन सायंकाल भीम-दुर्योधन-गदायुद्ध हुआ।

'भारतीय युद्धकाल-निर्णय' (मराठी) के लेखक प्रो. र. वि. वैद्य (१९६४) पुनर्वसु-पुष्य में युद्धारम्भ मानते हैं। इनके अनुसार युद्ध केवल सोलह दिनों का था। इनका यह भी कहना है कि भीष्म-निधन शुक्लपक्ष में कदापि नहीं हो सकता।

परन्तु युद्धारम्भ और युद्धान्त में श्रीनीलकण्ठाचार्य का 'स्वमत' ही प्रामाणिक सिद्ध होता है।

निष्कर्ष

जो महानुभाव भगवान् श्रीकृष्ण के 'सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति। संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम्।' (उद्योग., १४२/१८) केवल इस वचन को प्रमाण मानकर मार्गशीर्ष अमावास्या ज्येष्ठा में युद्धारम्भ मानकर अठारहवें दिन महाभारत-युद्ध की समाप्ति मानते हैं, उनके मत में एक तो 'पुष्येण सम्प्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः' (शल्य., ३४/६) इस बलदेववाक्य के अनुसार सैन्य-निर्याण से युद्ध-समाप्ति तक बयालीस दिनों की पूर्ति नहीं हो पाती, साथ ही श्रवण नक्षत्र में युद्धान्त नहीं हो पाता और आठवें, नौंवे दिन सन्ध्याकाल में अन्धकार-सम्बन्धी संकेत एवं चौदहवें दिन रात्रियुद्ध के पश्चात् तीन-चार मुहूर्त्त रात्रि शेष रहने पर चन्द्रोदय का स्पष्ट उल्लेख भी सर्वथा अपूर्ण ही रहता है—

ततो मुहूर्ताद् भुवनं ज्योतिर्भूतमिवाभवत्।
अप्रख्यमप्रकाशं च जगामाशु तमस्तथा।।

(द्रोणपर्व, १५४/५२)

त्रिभागमात्रशेषायां रात्र्यां युद्धमवर्तत।
कुरूणां पाण्डवानां च संहृष्टानां विशांपते।।

(द्रोणपर्व, १८६/१)

जो महानुभाव भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम दोनों के वचन अक्षरश: सत्य सिद्ध करने के उद्देश्य से मार्गशीर्ष अमावस्या से एक-एक दिन अवकाशयुक्त किन्तु चौदहवें और पन्द्रहवें दिन का युद्ध लगातार मानते हुए श्रवण में युद्धान्त मानते हैं, वे महाभारत के अत्यन्त प्रामाणिक वचनों के सर्वथा विरुद्ध अवकाश की कल्पना कर वस्तुस्थिति से सुदूर चले जाते है।

इन सब दृष्टियों से श्रीनीलकण्ठाचार्य का मत नक्षत्र-गणना, नक्षत्र के अनुगुण तिथि-गणना और युद्धारम्भ एवं युद्धान्त की दृष्टि से सर्वथा निर्दोष परिलक्षित होता है। अवश्य ही आचार्य ने युद्धारम्भ और युद्धान्त को भारत-सावित्री के अनुसार और श्रवण में युद्धान्त को महाभारत के अनुसार सिद्ध करने में समन्वय की जो रूपरेखा प्रस्तुत की है, वह पूर्णरूपेण ग्राह्य नहीं कही जा सकती।

गीता-जयन्ती जो कि आजकल मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी के रूप में प्रसिद्ध है, इसकी प्रामाणिकता भी श्रवण नक्षत्र में युद्धान्त को देखते हुए खण्डित हो जाती है।

भारत-सावित्री के अनुसार मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशी यद्यपि युद्धारम्भ की तिथि सिद्ध होती है, तथापि श्रवण नक्षत्र में युद्धान्त की दृष्टि से इसकी भी पूर्ण प्रामाणिकता नहीं सिद्ध होती।

केवल भीष्माचार्य के नेतृत्व में अवकाश और अन्यत्र अनवकाश मानकर नक्षत्रादि गणना के सर्वथा अनुरूप मार्गशीर्ष शुक्ल पञ्चमी से युद्धारम्भ वाला इस ग्रन्थ में निर्दिष्ट पक्ष भी अवकाश-अनवकाश के साङ्कर्य की दृष्टि से सन्दिग्ध कहा जा सकता है।

परन्तु यह सर्वथा निर्विवाद है कि महाभारत युद्ध ऐतिहासिक है, काल्पनिक नहीं। साथ ही महाभारत के अनुसार सर्वमान्य युद्धकाल प्राप्त होना भी कठिन है। हाँ इतना ही कहा जा सकता है कि कृष्णादि मासानुसार मार्गशीर्ष में युद्धारम्भ हुआ। यह भी कहा जा सकता है कि द्रोण, कर्ण और शल्य के नेतृत्वकाल में अवकाशरहित ही युद्ध हुआ। 'श्वो योत्स्यामः परैः सह' (भीष्म., ६४/७०) इस भीष्मवचन के अनुसार यह भी मान्य हो सकता है कि भीष्म के नेतृत्वकाल में भी लगातार ही युद्ध हुआ। अतः 'सप्तमाच्चापि दिवसात्' (उद्योग., १४२/१८) इस श्रीकृष्णवचन को इस अर्थ में ग्रहण करना आवश्यक है कि युद्धारम्भ-सम्बन्धी आवश्यक कृत्यों में उक्त समय का उपयोग हुआ। ऐसा मान लेने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी, त्रयोदशी या चतुर्दशी में युद्धारम्भ हुआ।

अतः मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी से चतुर्दशी या पूर्णिमा तक गीता-जयन्ती के उपलक्ष्य में महोत्सव मनाया जायँ। समय और धनादि के अभाव में एकादशी, त्रयोदशी या चतुर्दशी किसी एक तिथि से अथवा केवल एकादशी में ही गीता-जयन्ती मनाना भी उत्तम है। यद्यपि प्रामाणिक तिथि मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशी ही सिद्ध होती है।

भीष्म-निर्वाण

सौप्तिक-संहार के पश्चात् उषःकाल में दुर्योधन के देह-त्याग के अनन्तर संजय हस्तिनापुर गये। पुनः धृतराष्ट्र की प्रेरणा से धर्मराज युधिष्ठिर ने मृतकों के सामूहिक दाह आदि की व्यवस्था की। उन्होंने जलाञ्जलि के पश्चात् मासमात्र गंगा-तट पर निवास किया —

कृतोदकास्ते सुहृदां सर्वेषां पाण्डुनन्दनाः।
विदुरो धृतराष्ट्रश्च सर्वाश्च भारतस्त्रियः।।
तत्र ते सुमहात्मानो न्यवसन् पाण्डुनन्दनाः।
शौचं निर्वर्तयिष्यन्तो मासमात्रं बहिःपुरात्।।

(शान्तिपर्व, १/१-२)

पुनः सभी हस्तिनापुर आये। धर्मराज युधिष्ठिर का भगवान् श्रीकृष्ण के नेतृत्व में राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ। यथायोग्य महलों में पाण्डवों ने निवास किया।

पुनः भगवान् श्रीहरि की प्रेरणा से भीष्माचार्य के श्रीमुख से उपदेश-श्रवण की अभिलाषा से धर्मराज निज-परिकर-सहित पितामह की सेवा में कुरुक्षेत्र उपस्थित हुए। श्रीभगवान् ने दिव्यशक्ति और दिव्यदृष्टि से देवव्रत भीष्मजी को सम्पन्न किया। साथ ही जीवन के शेष दिनों का रहस्योद्घाटन करते हुए श्रीहरि ने पितामह से कहा—

पञ्चाशतं षट् च कुरुप्रवीर
शेषं दिनानां तव जीवितस्य।
ततः शुभैः कर्मफलोदयैस्त्वं
समेष्यसे भीष्म विमुच्य देहम्।।

(शान्तिपर्व, ५१/१४)

तत्पश्चात् उसी दिन चन्द्रोदय के दिव्य प्रकाश में सेनासहित पाण्डव हस्तिनापुर के लिए प्रस्थित हुए —

ततः पुरस्ताद् भगवान् निशाकरः
समुत्थितस्तामभिहर्षयंश्चमूम्।
दिवाकरापीतरसा महौषधीः
पुनः स्वकेनैव गुणेन योजयन्।।

(शान्तिपर्व, ५२/३३)

फिर रात्रि बिता कर उपदेश-श्रवण के योग्य परिकर-सहित धर्मराज भगवान् श्रीकृष्ण के मार्गदर्शन में भीष्माचार्य के समीप समुपस्थित हुए। कई दिनों तक उपदेश हुआ। पुनः भीष्माचार्य ने युधिष्ठिर से कहा —

आगन्तव्यं च भवता समये मम पार्थिव।
विनिवृत्ते दिनकरे प्रवृत्ते चोत्तरायणे।।

(अनुशा., १६६/१४)

तत्पश्चात् पाण्डव हस्तिनापुर आकर रहने लगे। यथासमय धर्मराज को भीष्मजी के देह-त्याग का स्मरण हो आया। वे सम्बन्धियों-सहित पितामह की सेवा में समुपस्थित हुए —

उषित्वा शर्वरीः श्रीमान् पञ्चाशन्नगरोत्तमे।
समयं कौरवाग्र्यस्य सस्मार पुरुषर्षभः।।
स निर्ययौ गजपुराद् याजकैः परिवारितः।
दृष्ट्वा निवृत्तमादित्यं प्रवृत्तं चोत्तरायणम्।।

(अनुशा., १६७/५-६)

निजसेवा में समुपस्थित धर्मराज से पितामह ने कहा —

अष्ट पञ्चाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः।
शरेषु निशिताग्रेषु यथा वर्षशतं तथा।।
माघोऽयं समनुप्राप्तो मासः सौम्यो युधिष्ठिर।
त्रिभागशेषः पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति।।

(अनुशा., १६७/२७-२८)

'इन तीखे अग्रभाग वाले बाणों की शय्या पर शयन करते हुए आज मुझे अट्ठावन दिन हो गये, किन्तु ये दिन मेरे लिए सौ वर्षों के समान बीते है।'

'युधिष्ठिर! इस समय सौम्य माघ का महीना प्राप्त है। त्रिभागशेष है, यह शुक्ल पक्ष है।'

अब विचार करना है कि 'मासमात्रं', 'पञ्चाशत् षट्', 'पञ्चाशत्' और 'अष्ट पञ्चाशतं' ये सब ''माघोऽयं समनुप्राप्तो मासः सौम्यो युधिष्ठिर। त्रिभागशेषः पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति।।'' इस भीष्मवचन के अनुसार माघ शुक्ल की सीमा में होने पर ही सार्थक हैं। अतः माघ से आगे इनकी गति अमान्य है।

इधर 'पञ्चाशतं' का प्रसिद्ध अर्थ पचास, 'पञ्चाशतं षट्' का छप्पन और 'अष्टपञ्चाशतं' का अट्ठावन होता है। ऐसी स्थिति में शरशय्या के तीसरे दिन ही जब श्रीहरि पितामह से उनके छप्पन दिन शेष की बात कर रहे हों तभी वाच्यार्थ में श्रीकृष्णवचन प्रमाण हो सकता है। परन्तु मूल के अनुशीलन से ही यह सिद्ध होता है कि युद्धान्त तक भीष्मजी के शरशय्या पर कम-से-कम (विना अवकाश के) नौ दिन हुए। पुनः पाण्डवों ने मासमात्र नगर के

बाहर नदी तट पर निवास किया। तत्पचात् हस्तिनापुर में श्राद्ध एवं राज्याभिषेकादि में व्यतीत हुआ। कुछ दिन यथायोग्य महलों में निवास किया। अतः कम-से-कम तीन-चार दिन हस्तिनापुर में व्यतीत हुए। इस तरह ९ + ३० + ४ = ४३ दिन भीष्माचार्य के पास पहुँचने में लगे। अतः उसके बाद भीष्मजी के छप्पन दिन शेष मानें तो ४३ + ५६ = ९९ दिन होते हैं।

इधर माघ की अवधि, उधर पौष में अधिमास असम्भव। उत्तरायण की प्रतीक्षा देखते हुए माघ में अधिमास की कल्पना भी निरर्थक। इन सब दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित होता है कि 'मासमात्रं', 'पञ्चाशतं षट्', 'पञ्चाशत्' और 'अष्टपञ्चाशतं' सबको माघोऽयं समनुप्राप्तः मासः सौम्यः' के अनुगुण घटाया जाय ? अथवा 'अष्टपञ्चाशतं रात्र्यः' का अट्ठावन दिन अर्थ ग्रहण कर उसी के अनुरूप 'मासमात्रं', 'पञ्चाशतं षट्', 'पञ्चाशतं' और 'त्रिभागशेषः' को लगाया जाय।

किसी भी दृष्टि से माघ का अतिक्रमण सर्वथा अनुपयुक्त है। अतः माघ की सीमा में रहते हुए भी उक्त पक्षों पर विचार अपेक्षित है। परन्तु किसी भी पक्ष को स्वीकार करने से पूर्व भीष्मपतन की प्रामाणिक तिथि प्राप्त होना परमावश्यक है।

श्रीकवीश्वर, जो कि चित्रा को ऐन्द्र नक्षत्र मानकर मार्गशीर्ष अमावास्या से युद्धारम्भ मानते हैं, उनके मत में पौष कृष्ण तृतीया भीष्मपतन की तिथि है।

प्रचलित गीता-जयन्ती के अनुसार पौषकृष्ण* षष्ठी में भीष्मपतन सिद्ध होता है। भारत-सावित्री के अनुसार पौषकृष्ण सप्तमी में भीष्मपतन सिद्ध होता है।

*** त्रयोदश (तेरह) दिन का पक्ष**

श्रीनीलकण्ठाचार्य के अनुसार गीता-जयन्ती मानने पर पौषकृष्ण अष्टमी को भीष्मपतन सिद्ध होता है।

मार्गशीर्ष शुक्ल पञ्चमी को युद्धारम्भ मानने पर पौषकृष्ण अष्टमी में भीष्मपतन सिद्ध होता है। मार्गशीर्ष अमावास्या ज्येष्ठा से भीष्माचार्य के नेतृत्वकाल

में अवकाश-युक्त युद्ध मानने पर पौषकृष्ण तृतीया को शरशय्या का प्रथम दिन सिद्ध होता है। इस तरह —

मार्गशीर्ष अमावास्या को युद्धारम्भ मानने पर पौषकृष्ण तृतीया, मार्गशीर्ष शुक्ल पञ्चमी में युद्धारम्भ मानने पर पौष कृष्ण अष्टमी, मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी को युद्धारम्भ मानने पर पौष कृष्ण षष्ठी, मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशी को युद्ध मानने पर पौष कृष्ण सप्तमी और मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशी को गीता जयन्ती मानने पर पौष कृष्ण अष्टमी को भीष्मपतन सिद्ध होता है।

परन्तु द्रोणाचार्य के नेतृत्व में अवकाश असम्भव होने के कारण पौषकृष्ण तृतीया को भीष्मपतन मानने पर चौदहवें दिन का रात्रियुद्ध पौषकृष्ण सप्तमी को सिद्ध होता है। ऐसा मानने पर उत्तर-रात्रि में तीन-चार मुहूर्त्त रात्रि शेष रहते चन्द्रोदय वाला निर्देश खण्डित होता है। साथ ही पौषकृष्ण एकादशी को युद्धान्त सिद्ध होने पर श्रवण-नक्षत्र-सम्बन्धी वचन भी निष्फल जाता है। अत: पौष कृष्ण तृतीया को भीष्मपतन मानने वाला पक्ष सर्वथा अमान्य है।

एकादशी को युद्धारम्भ असम्भव होने के कारण पौष कृष्ण षष्ठी को भीष्मपतन वाला पक्ष भी अमान्य सिद्ध होता है।

एतावता पौषकृष्ण सप्तमी या अष्टमी भीष्मपतन की प्रामाणिक तिथियाँ हो सकती हैं, यही जयद्रथवध के बाद उत्तररात्रि में चन्द्रोदय के उपयुक्त तिथियाँ भी हैं। अत: अब इन्हीं दृष्टियों से भीष्म-निर्वाण-सम्बन्धी विचार कर्तव्य है।* पौष कृष्ण अष्टमी को भीष्मपतन मानने पर पौष कृष्ण द्वादशी को रात्रि-युद्ध सिद्ध होता है। इस दृष्टि से त्रिभागशेष रात्रि में युद्धारम्भ का अभिप्राय चन्द्रोदय-सहित युद्धारम्भ ग्रहण करना चाहिए।

* 'फाल्गुन्यां निहतो भीष्म: कृष्णपक्षे च सप्तमी' यह भारत-सावित्री का मत भी युद्धान्त के अनुरूप नक्षत्र न होने के कारण अमान्य है।

प्रथम पक्ष — यद्यपि पौष कृष्ण तृतीया से माघी (माघपूर्णिमा) तक भीष्म जी के अट्ठावन दिन पूरे हो जाते हैं। अत: अब विचारणीय पक्ष यह उपस्थित होता है कि माघ की अन्तिम तिथि पूर्णिमा है, इससे आगे भीष्मनिर्वाण असम्भव है। इधर पौष कृष्ण अष्टमी से पूर्णिमा तक कुल तिरपन दिन होते

हैं। 'अष्टपञ्चाशतं रात्र्यः' का प्रसिद्ध अर्थ अट्ठावन है, अतः किस रीति से तिरपन ही अट्ठावन का रूप धारण कर सकता है।

यह निर्विवाद सत्य है कि भीष्मनिर्वाण-सम्बन्धी चारों वचन कूटार्थक हैं। ये कालकूट (काल-सम्बन्धी कूट) कालकूट के समान भयंकर हैं। अतः कूटभेदी प्रक्रिया से ही इनका समाधान सम्भव है। अन्यथा सम्बन्धित समस्त वचनों का सामञ्जस्य असम्भव है।

'तत्र ते सुमहात्मानो न्यवसन् पाण्डुनन्दनाः। शौचं निर्वर्तयिष्यन्तो मासमात्रं बहिः पुरात्॥' का अन्तरङ्ग तात्पर्य — 'युद्धारम्भ से आशौच-निवृत्ति और शौच-सम्पादन तक कुल तीस दिन व्यतीत हुए' ऐसा व्यक्त करने में है। 'द्वादशाहेन भूमिपः' (मनुस्मृति, ५/८३) इस स्मृति-वचन के अनुसार क्षत्रियों को शुद्धि प्राप्त करने के लिए बारह दिनों की ही अपेक्षा होती है। अतः महाभारतकार ने अतिरिक्त ३०—१२ = १८ दिनों का उल्लेख इस महत्त्वपूर्ण अभिप्राय से किया है कि महायुद्ध केवल अट्ठारह दिनों तक हुआ।

अभिप्राय यह कि क्षात्रधर्म की रीति से देहत्याग करने वाले वीरों की मृत्यु से प्राप्त आशौच की दैनिक शुद्धि युद्धकाल में ही हो जाती थी —

उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्म-हतस्य च।
सद्यः संतिष्ठते यज्ञस्तथाऽऽशौचमिति स्थितिः॥

(मनुस्मृति, ५/९८)

फिर भी सौप्तिक-संहार के और पूर्व-मृतकों के दाह-संस्कार से प्राप्त अशौच की निवृत्ति बारह दिनों में हुई। अतः युद्धान्त के पश्चात् पाण्डव बारह दिनों तक नदी तट पर ही बने रहे।

इस तरह पौष शुक्ल द्वितीया से पौष शुक्ल त्रयोदशी तक शौच-सम्पादन में व्यतीत हुआ। पौष शुक्ल चतुर्दशी को पाण्डव हस्तिनापुर में प्रविष्ट हुए। पौष-पूर्णिमा 'पुष्य' नक्षत्र में श्रीधर्मराज युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ। माघ कृष्ण प्रतिपदा को अन्यकृत्य तथा यथायोग्य महलों में निवास कर द्वितीया को भगवान् श्रीकृण की प्रेरणा से पाण्डव भीष्माचार्य की सेवा में कुरुक्षेत्र आये। भगवान् श्रीकृण से प्राप्त दिव्यदृष्टि और दिव्यशक्ति-सम्पन्न भीष्माचार्य द्वारा उपदेश की स्वीकृति प्राप्त पाण्डव परिकर-सहित हस्तिनापुर लौट आये।

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृण ने जो पितामह से 'पञ्चाशतं षट् च कुरुप्रवीर, शेषं दिनानां तव जीवितस्य।' कहा, उसका रहस्यार्थ इस प्रकार समझना चाहिए —

"सूर्योदय से सूर्यास्त और सूर्यास्त से सूर्योदय तक एक-एक दिन मान कर अट्ठाईस दिन ही छप्पन दिन हो जाते हैं। अत: हे भीष्म ? आपके कुल अट्ठाईस दिन शेष हैं। आज माघ कृष्ण द्वितीया है। आप माघी में देहत्याग कर दिव्य-धाम प्राप्त करेंगे।'

पुन: माघ कृष्ण तृतीया से माघ कृष्ण पञ्चमी तक श्रीभीष्ममुख-विनिःसृत दिव्योपदेश श्रवण कर शोकमुक्त पाण्डव रात्रि में हस्तिनापुर आ गये।

'उषित्वा शर्वरी: श्रीमान् पञ्चाशन्नगरोत्तमे' का भाव इस प्रकार हृदयंगम करना चाहिए —

पूर्वरीति से पचीस रातें ही पचास के तुल्य हो जाती हैं। अत: माघ कृष्ण पञ्चमी से माघ शुक्ल चतुर्दशी तक पाण्डव हस्तिनापुर में रहे। पुन: माघी पूर्णिमा को भीष्माचार्य के निर्वाण का समय समुपस्थित जान कर उनकी सेवा में समुपस्थित हुए। तब धर्मराज युधिष्ठिर से महात्मा भीष्म ने कहा—

'अष्ट पञ्चाशतं रात्र्य: शयानस्याद्य मे गता:' इसका अभिप्राय इस रीति से हृदयंगम करना चाहिए—

जिस दिन आप उपदेश के लिए प्रार्थना करने आये थे और भगवान् श्रीकृष्ण ने आयु के छप्पन दिन शेष बताये थे, उस दिन को लगाकर आज मेरे अट्ठावन दिन पूर्ण हो रहे हैं। अभिप्राय यह कि माघ कृष्ण द्वितीया से माघी पूर्णिमा तक उन्तीस दिन होते हैं, कूटार्थक शब्दों में यही अट्ठावन कहे गये हैं।

एतावता उक्त प्रक्रिया से पौषकृष्ण अष्टमी से माघी तक भीष्माचार्य के तिरपन दिन होते हैं। अत: माघ पूर्णिमा दिन के मध्याह्न में भीष्मजी का देहत्याग सिद्ध होता है। 'त्रिभागशेष:' का अभिप्राय दिनका त्रिभागशेष है। मध्याह्नोत्तर दिन त्रिभाग शेष होता ही है।

द्वितीय पक्ष

यह सत्य है कि भीष्म-निर्वाण से सम्बन्धित 'मासमात्रं' 'पञ्चाशतं षट्' 'पञ्चाशत्' और 'अष्ट पञ्चाशतं रात्र्यः' इन चारों का निर्विरोध सामञ्जस्य बिठाने के लिए चारों का ही गौणार्थ स्वीकार करना होगा। नहीं तो पौषकृष्ण तृतीया को भीष्मपतन मानकर माघी तक भीष्म जी के अट्ठावन दिन भी पूर्ण होंगे और तीस दिन उसी के अन्तर्गत गंगा-तट पर पाण्डवों के यद्यपि पूर्ण हो जायेंगे, परन्तु इस तरह दो वचनों को यथार्थ स्वीकार करने पर 'पञ्चाशतं षट् च' और 'पञ्चाशत्' ये दो वचन पूर्णरूप से उपेक्षित रह जायेंगे। परन्तु ऐसा अभीष्ट नहीं, अतः चारों का गौणार्थ यद्यपि पूर्वरीति से सुन्दर ढंग से घटित होता है, फिर भी इस सम्बन्ध में यह विचार करना आवश्यक है कि श्रीगीता-जयन्ती की प्रसिद्ध तिथि यद्यपि मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी है, परन्तु उसकी प्रसिद्धि अर्वाचीन सिद्ध होती है, जब कि माघ शुक्लाष्टमी भीष्माष्टमी के रूप में उसकी अपेक्षा प्राचीन-काल से प्रसिद्ध है। 'माघोऽयं' के साथ 'त्रिभागशेषः' का अन्वय करते समय श्रीनीलकण्ठाचार्य ने भी इसे स्वीकार किया है। अतः इसके अनुगुण ही शेष वचनों के समन्वय का सामञ्जस्य बिठाना आवश्यक है, इसी दृष्टि से यह द्वितीय गणना है —

माघोऽयं समनुप्राप्तो मासः सौम्यो युधिष्ठिर।
त्रिभागशेषः पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति।।

(अनुशा., १६७/२८)

इस श्लोक में यद्यपि 'पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति' के साथ 'त्रिभागशेषः' पठित है। इस दृष्टि से माघ शुक्ल दशमी की सिद्धि होती है। क्योंकि दशमी के बाद पक्ष का त्रिभाग (पाँच दिन) शेष रहता है। परन्तु माघ शुक्ला दशमी भीष्म जी के देहत्याग की तिथि रूप में प्रसिद्ध नहीं है। साथ ही ऐसा वैज्ञानिक प्रक्रिया का अनुशीलन करना चाहिए जिसके द्वारा तिथि एवं दिन दोनों का ग्रहण हो। तिथि का ग्रहण हो जाने से शुक्ल पक्ष के साथ 'त्रिभागशेषः' के अन्वय की आवश्यकता नहीं रह जाती। साथ ही दिन का समय निश्चित हो जाने पर दिवस के साथ 'त्रिभागशेषः' के अन्वय की आवश्यकता नहीं रह जाती। 'माघोऽयं' के साथ 'त्रिभागशेषः' का अन्वय करने से एक महीना

का साढ़े सात-सात दिन का चार भाग होता है। साढ़े सप्तमी अर्थात् अष्टमी के बाद महीने का त्रिभाग शेष रहता है। 'पक्षोऽयं शुक्ल:' का अभिप्राय शुक्लादि माघ महीना स्वीकार करना आवश्यक है। क्योंकि तभी माघ शुक्लाष्टमी के बाद महीने का त्रिभाग शेष सम्भव है। साथ ही साढ़े सप्तमी का अभिप्राय अष्टमी को दिन का त्रिभागशेष सिद्ध होता है। अत: 'माघोऽयं' के साथ 'त्रिभागशेष:' ग्रहण करने से तिथि एवं दिन दोनों का ग्रहण हो जाता है। साथ ही 'सौम्य:' इस चान्द्रमास की सार्थकता भी हो जाती है। सौम्य का अभिप्राय सुखद अथवा सौम्यायन (उत्तरायण) भी है।

इस तरह 'माघोऽयं' के साथ 'त्रिभागशेष:' का अन्वय करने पर पक्ष और दिवस का मध्यभाग सिद्ध होता है। परन्तु 'पक्षोऽयं' के साथ अन्वय करने पर दिवस का मध्यभाग सिद्ध नहीं होता। 'माघोऽयं' एवं 'पक्षोऽयं' के मध्य 'त्रिभागशेष:' पठित होने पर भी दिवस का अध्याहार कर उसके साथ 'त्रिभागशेष:' का अन्वय करने में क्लिष्ट कल्पना करनी पड़ती है, साथ ही दिवस का मध्यभाग सिद्ध होने पर भी पक्ष की तिथि सिद्ध नहीं होती।

अस्तु ! माघशुक्लाष्टमी भीष्म-निर्वाण की तिथि सिद्ध होती है। अब शेष वचनों की इसी के अनुकूल संगति लगाना आवश्यक है।

अभीष्ट अर्थ की सिद्धि के लिए पदशेष एवं वाक्यशेष का अध्याहार कर सन्दर्भपूर्ति की प्रथा पूर्वाचार्यों द्वारा अनुमोदित एवं आविष्कृत है। प्रसङ्गानुसार उसी का अनुसरण यहाँ भी अपेक्षित है।

'मासमात्रं' का पूर्व रीति से युद्धकाल के अतिरिक्त बारह दिन अर्थ करना उपयुक्त है।

अब क्योंकि पौषकृष्ण अष्टमी से माघशुक्ल अष्टमी तक छियालीस दिन होते है; इसलिए 'अष्ट पञ्चाशतं रात्र्य:' का कूटार्थ 'अष्ट पञ्चाशतं रात्र्य:', द्वादशन्यूना: इति शेष:' ग्रहण करना चाहिए। अर्थात् अट्ठावन घटे बारह बराबर छियालीस (५८-१२ = ४६)।

इस तरह पौष कृष्ण अष्टमी से पौष शुक्ल प्रतिपदा तक युद्धकाल में पितामह के नौ दिन शरशय्या पर हुए। पौष शुक्ला द्वितीया से पौषशुक्ला त्रयोदशी तक बारह दिन शुद्धिकाल में शरशय्या पर हुए। पुन: पौष शुक्ला

चतुर्दशी से माघ कृष्ण तृतीया तक धर्मराज के राज्याभिषेक काल में भीष्माचार्य के पाँच दिन शरशय्या पर हुए। अब ९+१२+५ = २६ दिन कुल हुए। अत: ४६-२६ = २० दिन जीवन के शेष रहे।

तृतीया से पूर्व राज्याभिषेकादि अत्यावश्यक कृत्यों में लग जाना स्वाभाविक था और भीष्माचार्य से मिलकर पुन: रात्रि विश्राम के उद्देश्य से हस्तिनापुर लौटते समय स्फुट-चन्द्रोदय का उल्लेख देखते हुए माघ कृष्ण चतुर्थी के आगे बढ़ना, अधिक रात्रि की क्लिष्ट कल्पना में हेतु होने के कारण अनुपयुक्त है। अस्तु !

माघ कृष्ण चतुर्थी को भगवान् श्रीकृष्ण ने भीष्माचार्य से कहा —

पञ्चाशतं षट् च कुरुप्रवीर
शेषं दिनानां तव जीवितस्य।

अत: 'षड्विंशत् न्यूना: षट् पञ्चाशतं' ऐसा भाव ग्रहण करने पर ५६ - ३६ = २० दिन शेष रहे।

अब मुख्य प्रश्न उठता है कि बीस दिनों में आदि (उपदेश आरम्भ के एक दिन पूर्व) और अन्त (भीष्म के देहत्याग का दिन) छोड़कर अठारह दिन रहे।इनमें कितने दिन उपदेश-श्रवण में और कितने ही हस्तिनापुर में लगना चाहिए ?

वाच्यार्थ में 'पञ्चाशतं षट्' अर्थात् छप्पन दिन शेष रहते हैं और 'पञ्चाशत्' पचास दिन हस्तिनापुर में व्यतीत होते हैं। अत: छप्पन से आदि-अन्त के दो दिन घटा देने पर चौवन दिन शेष रहते हैं। चौवन दिनों में माघकृष्ण पञ्चमी सहित पाँच दिन उपदेश में और नवमी को रात्रिविश्राम हस्तिनापुर में मान लेने पर माघकृष्ण नवमी से माघ शुक्ल सप्तमी तक चौदह रात्रियाँ हस्तिनापुर में व्यतीत होती हैं। माघ शुक्लाष्टमी को भीष्म का निर्वाण सिद्ध होता है।

अत: 'पञ्चाशत् नगरोत्तमे' के साथ 'षट् त्रिंशत् न्यूना इति शेष:' का अध्याहार करने पर ५०-३६ = १४ रात्रियाँ हस्तिनापुर में व्यतीत होती है।

शुक्लादि एवं कृष्णादि मास में शुक्ल-पक्ष में कोई अन्तर न होने पर भी कृष्ण-पक्ष में एक महीने का अन्तर हो जाता है। परन्तु इस दृष्टि से भी शुक्लादि मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी से माघ शुक्लाष्टमी तक छियालीस दिन ही सिद्ध होते हैं।

महाभारत की दाक्षिणात्य प्रतियों में माघशुक्लाष्टमी रोहिणी नक्षत्र और मध्याह्न का वर्णन है —

(शुक्लपक्षस्य चाष्टम्यां माघमासस्य पार्थिव।
प्राजापत्ये च नक्षत्रे मध्यं प्राप्ते दिवाकरे।।)
निवृत्तमात्रे त्वयन उत्तरे वै दिवाकरे।
समावेश यदात्मानमात्मन्येव समाहितः।।

(शान्तिपर्व, ४७/३)

उक्त श्लोकों में प्रथम दाक्षिणात्य है। दोनों का सम्मिलित अर्थ इस प्रकार है —

'राजन् ! जब दक्षिणायन पूर्ण हुआ और सूर्य उत्तरायण में आ गये, तब माघमास के शुक्ल-पक्ष की अष्टमी तिथि को रोहिणी नक्षत्र में मध्याह्न-काल में भीष्म जी ने ध्यानमग्न होकर (देह-त्याग के अभिप्राय से) अपने मन को आत्मा में लगा दिया।।'

इस तरह माघ शुक्लाष्टमी को भीष्म-निर्वाण और मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशी को गीता-जयन्ती एवं युद्धारम्भ की सिद्धि होती है।

भीष्म-निर्वाण के सम्बन्ध में भांडारकर संस्था की टिप्पणी के अनुसार भीष्म-निधन तिथि — माघ कृष्ण चतुर्थी है। 'त्रिभागशेषः पक्षोऽयं' की संगति इस प्रकार लगाते हैं — उस दिन कृष्ण पक्ष के केवल चार ही दिन अर्थात् करीब एक चौथाई हिस्सा ही बीता था तथा तीन चौथाई शेष था, अतः उस समय (प्रकाश की दृष्टि से) शुक्ल पक्ष का प्रारम्भ माना जा सकता है।

श्री के. ह्वी. अभ्यंकर ने भीष्म-निधन माघ कृष्ण पञ्चमी में माना है।

परन्तु महाभारत में शुक्ल पक्ष का स्पष्ट उल्लेख और भीष्माष्टमी की प्रसिद्ध तिथि के सर्वथा विरुद्ध उक्त विचार हैं।

टिप्पणी–

सनत्कुमार-संहिता के कार्तिक-माहात्म्य में बीसवें अध्याय में शुक्ल पक्ष के सन्दर्भ में लिखा है — 'एकादश्यां कार्तिकस्य याचितं च जलं त्वया', इस वचन के अनुसार शरशय्या पर आसीन भीष्मपितामह ने अर्जुन से कार्तिक शुक्ल एकादशी के दिन जल माँगा।

महाभारत भीष्मपर्व में ११९ वें अध्याय में श्रीभीष्मपितामह के शरशय्या लाभ का वर्णन है। १२० वें अध्याय में अर्जुन द्वारा उन्हें बाणों की तकिया देने का उल्लेख है। पुनः रात्रि-विश्राम के पश्चात् प्रातःकाल उन्हें धनुर्धर धनञ्जय (अर्जुन) द्वारा दिव्य-जल प्रदान करने का उल्लेख १२१ वें अध्याय में है।

व्युष्टायां तु महाराज शर्वर्यां सर्वपार्थिवाः।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च उपतिष्ठन् पितामहम्।।

(भीष्मप., १२१/१)

आदि उक्तियों में उक्त तथ्य का प्रकाश द्रष्टव्य है। अतः महाभारतके अनुसार कार्तिक शुक्ल दशमी को भीष्म-पतन मान्य होगा। ऐसी स्थिति में कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से युद्धारम्भ मान्य होगा। शुक्लादि मासानुसार कार्तिक कृष्ण तृतीया में युद्धान्त मान्य होगा। कृष्णादि मासानुसार मार्गशीर्ष कृष्ण तृतीया में युद्धान्त मान्य होगा। ऐसी स्थिति में 'कौमुदे मासि रेवत्यां शरदन्ते हिमागमे' इस महाभारत-वचन का यह अर्थ लगाना पड़ेगा कि श्रीभगवान् ने आश्विन में उपप्लव्य से हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान किया। फिर 'अमावास्या भविष्यति, संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम्।' इस श्रीकृष्ण वचन से संगति लगाने के लिए आश्विन की अमावास्या ज्येष्ठा नक्षत्र में मानना पड़ेगा, परन्तु यह भी उपयुक्त नहीं। साथ ही आश्विन की पूर्णिमा उससे एकपक्ष पूर्व लगभग रोहिणी में मानना होगा, परन्तु यह भी उपयुक्त नहीं। साथ ही कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा मूल नक्षत्र में युद्धारम्भ और कार्तिक कृष्ण तृतीया आश्लेषा में युद्धान्त मान्य होगा, परन्तु 'पुष्येण संप्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः' इस बलदेव-वाक्यानुसार युद्धान्त श्रवण में होना चाहिए।

साथ ही शुक्ल प्रतिपदा से युद्धारम्भ मानने पर 'अमावास्या भविष्यति संग्रामो युज्यतां तस्यां' इस भगवद्वचन की यद्यपि इस प्रकार संगति लग जायगी — 'अमावास्या को सैन्य-प्रशिक्षण और शुक्ल प्रतिपदा को युद्धारम्भ हुआ' परन्तु शुक्ल चतुर्दशी को चौदहवें दिन का युद्ध सिद्ध होने के कारण उत्तररात्रि में चन्द्रोदय वाला वचन तथा आठवें-नवें दिन के युद्ध में सन्ध्याकाल एवं रात्रि में घोर अन्धकार आदि के संकेत व्यर्थ जायेंगे।

यद्यपि इस रीति से भीष्मपितामह के शरशय्या पर कार्तिक शुक्ल १० से माघ शुक्ल ८ तक लगभग ९० दिन हो जायेंगे, अतः भीष्मनिर्वाण-सम्बन्धी दिनों की संगति में सुगमता रहेगी, परन्तु युद्धकाल ही महाभारत के प्रतिकूल होने पर भीष्मनिर्वाण की अनुकूलता भला कैसे ग्राह्य होगी ?

अतः सनत्कुमार-संहिता का उक्त वचन महाभारत के प्रतिकूल होने के कारण 'कल्पभेद' से मान्य है। अभिप्राय यह कि जिस ग्रन्थ का श्रीमद्भागवत आदि की तरह स्वतन्त्र प्रामाण्य है, उसमें कल्पभेद मान्य है और जो ग्रन्थ महाभारत के अनुसार बना है, वह महाभारत के विरुद्ध होने पर उतने अंशों में प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता।

'महाभारत युद्ध को लेकर कल्पभेद की बात नहीं बन सकती', ऐसा मानना भी अनुचित है। क्योंकि महाभारत के अनुसार युद्धकाल उपस्थित होने पर श्रीबलराम जी तीर्थयात्रा के उद्देश्य से चले और गदायुद्ध के समय बयालीसवें दिन लौट आये, जबकि श्रीमद्भागवत के अनुसार गदायुद्ध के समय पहुँचने तक उनके कई महीने बीत चुके थे। (नैमिषारण्य में सूतवध के पश्चात् बारह महीने की शेष यात्रा का भागवत में उल्लेख है —

'चरित्वा द्वादश मासांस्तीर्थस्नायी विशुद्धयसे'

(भाग., १०/७८/४०)

* युद्ध-दीपिका *

वर्ष	—	द्वापर के सन्ध्यंश और कलि की सन्धि
अयन	—	दक्षिणायन
ऋतु	—	हेमन्त

मास	—	मार्गशीर्ष एवं पौष
पक्ष	—	मार्गशीर्ष शुक्ल एवं पौष शुक्ल
तिथि	—	मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशी से पौष शुक्ल प्रतिपदा
नक्षत्र	—	मृगशिरा से श्रवण
विशेष	—	मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष तेरह दिनों का था
भीष्म-पतन	—	पौषकृष्ण अष्टमी
भीष्म-निर्वाण	—	माघ शुक्लाष्टमी।

* युद्ध-पूर्विका *

कार्तिक शुक्ल ११ रेवती	—	श्रीकृष्ण का उपप्लव्य नगर से हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान
मार्गशीर्ष कृष्ण ५ पुष्य	—	श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर से उपप्लव्य के लिए प्रस्थान
मार्गशीर्ष कृष्ण ५ पुष्य	—	कौरव-सेना का कुरुक्षेत्र के लिए प्रस्थान
मार्गशीर्ष कृष्ण ६ पुष्य	—	(१) पाण्डवों से मिलने के लिए श्रीबलदेव जी का शुभागमन
		(२) पाण्डव-सेना का कुरुक्षेत्र के लिए प्रस्थान
मार्गशीर्ष शुक्ल १३ रोहिणी	—	(१) सैन्य-शिक्षण, युद्ध-मर्यादा-निर्धारण
		(२) श्रीवेदव्यास द्वारा हस्तिनापुर में संजय को दिव्य-शक्ति एवं दिव्य-दृष्टि-प्रदान

* युद्ध-सारिणी *

मार्गशीर्ष शुक्ल	१४	मृगशिरा	युद्धारम्भ : गीताजयन्ती
मार्गशीर्ष	१५	आर्द्रा	दूसरे दिन का युद्ध
पौषकृष्ण	१	पुनर्वसु	तीसरे दिन का युद्ध
पौषकृष्ण	२	पुष्य	चौथे दिन का युद्ध
पौषकृष्ण	३	आश्लेषा	पाँचवें दिन का युद्ध
पौषकृष्ण	४	मघा	छठे दिन का युद्ध
पौषकृष्ण	५	पूर्वाफाल्गुनी	सातवें दिन का युद्ध
पौषकृष्ण	६	उत्तराफाल्गुनी	आठवें दिन का युद्ध
पौषकृष्ण	७	हस्त	नवें दिन का युद्ध
पौषकृष्ण	८	चित्रा	दशवें दिन का युद्ध : भीष्मपतन
पौषकृष्ण	९	स्वाति	ग्यारहवें दिन का युद्ध
पौषकृष्ण	१०	विशाखा	बारहवें दिन का युद्ध
पौषकृष्ण	११	अनुराधा	१३वें दिन का युद्ध : अभिमन्युवध
पौषकृष्ण	१२	ज्येष्ठा	१४वें दिन का युद्ध : जयद्रथवध
पौषकृष्ण	१३	मूल	१५वें दिन का युद्ध : द्रोणवध
पौषकृष्ण	१४	पूर्वाषाढ़ा	१६वें दिन का युद्ध
पौषकृष्ण	अमा.	उत्तराषाढ़ा	१७वें दिन का युद्ध : कर्णवध
पौषशुक्ल	१	श्रवण	१८वें दिन का युद्ध : दुर्योधन हनन, अश्वत्थामा द्वारा सौप्तिक-संहार

* नक्षत्र-सारिणी *

नक्षत्र	मास-पूर्णिमा	देवता
१ अश्विनी		अश्विनीकुमार
२. भरणी	आश्विन	यम
३. कृत्तिका		अग्नि
४. रोहिणी	कार्तिक	ब्रह्मा
५. मृगशिरा		चन्द्र
६. आर्द्रा	मार्गशीर्ष	शिव
७. पुनर्वसु		अदिति
८. पुष्य	पौष	वृहस्पति
९. आश्लेषा		सर्प
१०. मघा	माघ	पितर
११. पूर्वाफाल्गुनी		भग
१२. उत्तराफाल्गुनी	फाल्गुन	अर्यमा
१३. हस्त		सूर्य
१४. चित्रा		विश्वकर्मा
१५. स्वाति	चैत्र	वायु
१६. विशाखा		अग्नि-इन्द्र
१७. अनुराधा	वैशाख	मित्र
१८. ज्येष्ठा	ज्येष्ठ	इन्द्र
१९. मूल		निर्ऋति
२०. पूर्वाषाढ़ा		उदक
२१. उत्तराषाढ़ा	आषाढ़	विश्वेदेवा

२२.	श्रवण		विष्णु
२३.	धनिष्ठा	श्रावण	वसु
२४.	शतभिषा		वरुण
२५.	पूर्वाभाद्रपदा	भाद्रपद	अजचरण
२६.	उत्तराभाद्रपदा		अहिर्बुध्न्य
२७.	रेवती	आश्विन	पूषा

परिशिष्ट

श्री ग. वा. कवीश्वर 'महाभारत-युद्ध के कालगणनात्मक रहस्य' नामक पुस्तक में भगवान् श्रीकृष्ण के 'सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति' (उद्योग., १४२/१८) इस वचन को प्रमाण मानकर मार्गशीर्ष अमावास्या को युद्धारम्भ मानते हैं। उसके बाद एक-एक दिन अवकाश देकर पौष शुक्ल पञ्चमी को श्रवण नक्षत्र में युद्धान्त मानते हैं। इस मत में पौष कृष्ण द्वादशी को जयद्रथवध के बाद रात्रियुद्ध के कारण अवकाश का क्रम खण्डित होता है।

कवीश्वर जी शल्यवध के दूसरे दिन (युद्ध के उन्नीसवें दिन) दुर्योधनवध और सौप्तिक-संहार मानते हैं। क्योंकि श्रीबलराम जी की तीर्थयात्रा के प्रसंग में महाभारत की कुछ प्रतियों के अनुसार शल्यवध का समाचार गदायुद्ध के एक दिन पूर्व ही श्रीबलराम जी को प्राप्त होता है। उसके बाद वे एक रात तीर्थ में निवास कर देवर्षि नारद से प्रेरित होकर भीमसेन और दुर्योधन के गदायुद्ध में दर्शक के रूप में सम्मिलित होते हैं।

*** अभिजिद् विधि**

परन्तु महाभारत में सर्वत्र 'अठारह दिनों तक युद्ध हुआ' ऐसा ही उल्लेख है।

चौदहवें दिन के रात्रियुद्ध में जब कर्ण की शक्ति से घटोत्कच मारा गया, प्राणों को संकट में डालकर शोकग्रस्त धर्मराज युधिष्ठिर कर्ण से युद्ध करने जा रहे थे, तब दिव्यशक्ति-सम्पन्न दिव्यदर्शी वेदव्यास ने प्रकट होकर

उनसे कहा — 'पञ्चमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति।' = 'हे तात ! पाँचवें दिन पृथिवी तेरी हो जायगी।' (द्रोणपर्व, १८३/६५)।

कवीश्वर के मत में कृष्ण द्वादशी को रात्रियुद्ध था तथा शुक्ल पञ्चमी को गदायुद्ध। अत: पाँच दिनों के स्थान पर नौ दिनों की सिद्धि कैसे सम्भव है ? अस्तु, यह निर्विवाद सत्य है कि जब उसके बाद लगातार युद्ध हो और अठारहवें दिन युद्ध की समाप्ति हो, तभी श्रीवेदव्यास भगवान् का उक्त वचन सार्थक हो सकता है।

कहा जा सकता है कि शल्य-वध के बाद लगभग सायंकाल दुर्योधन के द्वैपायन सरोवर को माया से स्तम्भित कर उसमें छिपने का वर्णन है। उसके घण्टों बाद पाण्डवों से उसके सम्भाषण का वर्णन है; फिर रात बीतने पर बलरामजी के गदायुद्ध में सम्मिलित होने का उल्लेख है, इन सबकी संगति कैसे सम्भव है ?

ध्यानपूर्वक इस प्रश्न का उत्तर हृदयंगम करने योग्य है। जिस तरह चौदहवें दिन के रात्रियुद्ध का और सौप्तिक-संहार का भी पुष्पिका में रात्रियुद्ध के रूप में उल्लेख हुआ है, उसी तरह यदि गदायुद्ध रात्रि में हुआ होता तो पुष्पिका में उसका उल्लेख भी 'रात्रियुद्ध' के रूप में ही होता। अथवा दुर्योधन का पता लग जाने पर गदायुद्ध से पूर्व एक रात्रि बीती होती तो उसका उल्लेख भी अवश्य होता।

अस्तु ! सन्दर्भ का आद्योपान्त अनुशीलन करने पर यह सिद्ध होता है कि दुर्योधन, भीम, युधिष्ठिर और अश्वत्थामा ने प्रतिज्ञापूर्वक सर्वत्र 'अद्य' (आज) का ही प्रयोग किया है। साथ ही दुर्योधन के धराशायी होने तक 'सायंकाल' का ही उल्लेख किया गया है। इतना ही नहीं, दुर्योधनवध का समाचार वार्तिकों से सुनकर जब कृतवर्मा और कृपाचार्य सहित अश्वत्थामा उसी दिन सर्वपाञ्चालों के वध की प्रतिज्ञा कर घोर जंगल में प्रवेश कर गये, तब सूर्यास्त हो रहा था — 'सूर्यास्तमनवेलायां' (सौप्तिक., २/१८), 'शर्वरी समपद्यत' (सौप्तिक., २४)। अश्वत्थामा ने आधी रात तक सौप्तिक-संहार कर दिया — 'तस्या रजन्यास्त्वर्धेन' (सौप्तिक, ८/३२)। फिर उषाकाल में दुर्योधन से मिला। सौप्तिक-संहार का समाचार सुनकर सुयोधन ने प्रसन्नता

से देहत्याग किया। दुर्योधन से मिलकर संजय हस्तिनापुर की ओर चला — 'प्रत्यूषकाले शोकार्ता:'

दुर्योधन के धराशायी होने पर भगवान् श्रीकृष्ण का वचन है —

कृतकृत्याश्च सायाह्ने निवासं रोचयामहे।
साश्वनागरथाः सर्वे विश्रमामो नराधिपाः।।

(शल्यपर्व, ६१/६९)

'अब हम लोगों का कार्य पूर्ण हो गया, अत: सायंकाल के समय विश्राम करने की इच्छा हो रही है। राजाओं ! हम लोग घोड़े, हाथी एवं रथसहित विश्राम करें।'

अत: दुर्योधनवध सूर्यास्त के सन्निकट हुआ। उसी घायल-दशा में उसने रात्रि बिताई —

दुर्योधनोऽपि राजेन्द्र शोणितेन परिप्लुतः।
तां निशां प्रतिपेदेऽथ सर्वभूतभयावहाम्।।

(शल्य., ६५/४५)

'राजेन्द्र ! रक्त में सने हुए दुर्योधन ने सम्पूर्ण भूतों के मन में भय उत्पन्न करने वाली वह रात वहीं व्यतीत की।।'

श्रीकवीश्वर का कहना है—

शल्यवध की सूचना के बाद श्रीबलभद्र जी ने 'वृद्धा-कुमारी-कन्या' तीर्थ से चलकर 'प्लक्षप्रस्त्रवण' और वहाँ से 'कारपवन' नामक उत्तम तीर्थ में जाकर रात्रि-विश्राम किया। उसके पश्चात् उन्हें देवर्षि नारद से जयद्रथ, कर्ण एवं शल्यादि के वध की सूचना तथा भीम-दुर्योधन के गदायुद्ध में दर्शक के रूप में सम्मिलित होने की प्रेरणा मिली। अत: शल्यवध के दूसरे दिन गदायुद्ध में दुर्योधनवध सिद्ध होता है।

इसका उत्तर यह है कि यद्यपि निम्नलिखित उक्तियों से रात्रि-विश्राम के पूर्व शल्यवध की सूचना सिद्ध होती है —

'तत्रस्थश्चापि शुश्राव हतं शल्यं हलायुधः।
शुश्राव शल्यं संग्रामे निहतं पाण्डवैस्तस्तदा।।'

(शल्यपर्व, ५२/२६,२७)

"वहीं रहकर श्रीबलराम जी ने पाण्डवों द्वारा शल्य के मारे जाने का समाचार सुना।।"

और निम्नलिखित वचन से रात्रिविश्राम भी सिद्ध होता है—

सम्प्राप्तः कारपवनं प्रवरं तीर्थमुत्तमम्।
हलायुधस्तत्र चापि दत्त्वा दानं महाबलः।।
आप्लुतः सलिले पुण्ये सुशीते विमले शुचौ।
संतर्पयामास पितृन् देवांश्च रणदुर्मदः।।
तत्रोष्यैकां तु रजनीं यतिभिर्ब्राह्मणैः सह।
मित्रावरुणयोः पुण्यं जगामाश्रममच्युतः।।

(शल्यपर्व, ५४/१२-१४)

"फिर वे कारपवन नामक उत्तम तीर्थ में गये। हलधर ने वहाँ के निर्मल, पवित्र और अत्यन्त शीतल पुण्यदायक जल में गोता लगाकर ब्राह्मणों को दान दे देवताओं और पितरों का तर्पण किया। तत्पश्चात् रणदुर्मद बलरामजी यतियों और ब्राह्मणों के साथ वहाँ एक रात रहकर मित्रावरुण के पवित्र आश्रम पर गये।।"

साथ ही —

ततोऽब्रवीद् रौहिणेयो नारदं दीनया गिरा।।
किमवस्थं तु तत् क्षत्रं ये तु तत्राभवन् नृपाः।
श्रुतमेतन्मया पूर्वं सर्वमेव तपोधन।।
विस्तरश्रवणे जातं कौतूहलमतीव मे।

(शल्य., ५४/२३-२४-१/२)

"तब रोहिणीनन्दन बलराम ने दीनवाणी में नारदजी से पूछा — 'तपोधन! जो राजा लोग वहाँ उपस्थित हुए थे, उन सब क्षत्रियों की क्या अवस्था हुई है, यह सब तो मैंने पहले ही सुन लिया था। इस समय कुछ विशेष

और विस्तृत समाचार जानने के लिए मेरे मन में अत्यन्त उत्सुकता हुई है।।''

श्रीनारदजी के प्रति बलभद्रजी की उक्त उक्तियों से यह भी सिद्ध होता है कि उन्हें युद्धसम्बन्धी सूचना विश्वस्त व्यक्तियों से प्राप्त होती थी।

तथापि किन्हीं-किन्हीं प्राचीन प्रतियों में भी रात्रि-विश्राम से पूर्व शल्यवध की सूचना वाला श्लोक नहीं है। अत: उसे क्षेपक माना जा सकता है। देवर्षिद्वारा प्राप्त सूचना शल्यवध के बाद उसी दिन हो सकती है, अत: उसे प्रामाणिक मानने में कोई आपत्ति नहीं है।

अथवा अठारह दिनों तक लगातार युद्ध और 'पञ्चमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति' इस महर्षि वेदव्यास के वाक्य को देखते हुए शल्यवध-सम्बन्धी वचन सत्य नहीं माना जा सकता। कदाचित् क्षेपक सिद्ध न भी हो सके तो गौणार्थ की कल्पना इस तरह कर लेनी चाहिए —

श्रीकृष्ण-प्रेरित धर्मराज ने जब सायंकाल शल्यवध का निश्चय कर लिया, तब धर्म और ब्रह्म को प्रमाण मानने वाले दैवज्ञ ब्राह्मणों की दृष्टि में वह मारा ही जा चुका। जैसे कृष्ण भगवान् से मारे हुओं को ही अर्जुन ने मारा, वैसे ही श्रीभगवान् के अमोघ प्रताप से समन्वित निज संकल्प के प्रभाव से उसी समय मारे गये शल्य को ही प्रत्यक्ष युद्ध में धर्मराज ने मारा।

इस तरह उन्नीस दिनों तक युद्ध की बात और द्रोणनिधन से दुर्योधन-निधन तक अवकाशयुक्त युद्ध की बात निःसार सिद्ध होती है।

इसी सन्दर्भ में यह भी समझ लेना चाहिए कि द्रोणाचार्य के नेतृत्व में लगातार युद्ध हुआ —

तस्य त्वहानि चत्वारि क्षपा चैकास्यतो गता।
तस्य चाह्नस्त्रिभागेन क्षयं जग्मुः पतत्त्रिणः।।

(द्रोण., १९१/९)

अत: अभिमन्युवध के बाद जयद्रथवध से पूर्व अवकाश मानना अर्जुन की अमोघ प्रतिज्ञा को और संजय के उक्त वचन को मिथ्या सिद्ध करना है। जो किसी प्रकार उचित सिद्ध किया ही नहीं जा सकता।

अभिमन्युवध जो कि द्रोणाचार्य के नेतृत्व में तेरहवें दिन हुआ, उसके बाद चौदहवें दिन अवकाश इसलिए भी सम्भव नहीं था, क्योंकि अर्जुन ने रात बीतने के बाद दूसरे ही दिन सूर्यास्त तक जयद्रथवध की घोर प्रतिज्ञा कर ही ली थी —

धर्मादपेता ये चान्ये मया नात्रानुकीर्तिताः।
ये चानुकीर्तितास्तेषां गतिं क्षिप्रमवाप्नुयाम्।।
यदि व्युष्टामिमां रात्रिं श्वो न हन्यां जयद्रथम्।
इमां चाप्यपरां भूयः प्रतिज्ञां मे निबोधत।।
यद्यस्मिन्नहते पापे सूर्योऽस्तमुपयास्यति।
इहैव सम्प्रवेष्टाहं ज्वलितं जातवेदसम्।।

(द्रोणपर्व, ७३/४५-४७)

'ऊपर जिन पापियों का नाम मैंने गिनाया है तथा जिन दूसरे पापियों का नाम नहीं गिनाया है, उनको जो दुर्गति प्राप्त होती है, उसी को शीघ्र ही मैं भी प्राप्त करूँ; यदि यह रात बीतने पर कल जयद्रथ को न मार डालूँ।।'

'अब आप लोग मेरी यह दूसरी प्रतिज्ञा भी पुनः सुन लें। यदि इस पापी जयद्रथ को मारे जाने से पहले ही सूर्यदेव अस्ताचल को पहुँच जायेंगे तो मैं यही प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा।।'

अभिमन्युवध के दिन ही अर्जुन की प्रतिज्ञा मानना और एक दिन युद्ध बन्द रखना, श्रीकृष्णार्जुन दोनों को मिथ्याभाषी सिद्ध करना है। भगवान् श्रीकृष्ण ने उसी रात देवी सुभद्रा से कहा —

यत् पार्थेन प्रतिज्ञातं तत् तथा न तदन्यथा।
चिकीर्षितं हि ते भर्तुर्न भवेज्जातु निष्फलम्।।
यदि च मनुजपन्नगाः पिशाचा
रजनिचराः पतगाः सुरासुराश्च।
रणगतमभियान्ति सिन्धुराजं
न स भविता सह तैरपि प्रभाते।।

(द्रोण., ७७/२५,२६)

'अर्जुन ने जिस बात के लिए प्रतिज्ञा कर ली है, वह उसी रूप में पूर्ण होगी। उसे कोई पलट नहीं सकता। तुम्हारे स्वामी जो कुछ करना चाहते हैं, वह कभी निष्फल नहीं होता।।'

'यदि मनुष्य, नाग, पिशाच, निशाचर, पक्षी, देवता और असुर भी रणक्षेत्र में आये हुए सिन्धुराज जयद्रथ की सहायता के लिए आ जायँ तो भी वह कल उन सहायकों के साथ ही जीवन से हाथ धो बैठेगा।।'

वीर अर्जुन की प्रतिज्ञा के अनुरूप ही उसी रात श्रीभगवान् का उक्त वचन होना चाहिए, तभी पार्थ की प्रतिज्ञा सत्य सिद्ध होगी।

अर्जुन की प्रतिज्ञा से सन्त्रस्त स्वयं जयद्रथ का वचन भी इसमें प्रमाण है —

मामसौ पुत्रहन्तेति श्वोऽभियाता धनञ्जयः।
प्रतिज्ञातो हि सेनाया मध्ये तेन वधो मम।।
तां न देवा न गन्धर्वा नासुरोरगराक्षसाः।
उत्सहन्तेऽन्यथाकर्तुं प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः।।

(द्रोण., ७५/१३,१४)

'राजन् ! मुझे अपने पुत्र का घातक समझकर अर्जुन कल सबेरे मुझपर आक्रमण करने वाला है, क्योंकि उसने अपनी सेना के बीच में मेरे वध की प्रतिज्ञा की है।।'

'सव्यसाची अर्जुन की उस प्रतिज्ञा को देवता, गन्धर्व, असुर, नाग और राक्षस भी अन्यथा नहीं कर सकते।।'

प्रतिज्ञा के अनन्तर ही अर्जुन के गाण्डीव धनुष की टंकार से, श्रीकृष्णार्जुन के दिव्य शङ्खघोष से तथा पाण्डव वीरों के सिंहनाद से सन्त्रस्त कौरव-गुप्तचरों द्वारा पार्थ की जयद्रथवध-सम्बन्धी प्रतिज्ञा सुनने से पूर्व यह समझकर कि अभिमन्युवध के समाचार से क्रुद्ध अर्जुन रात्रि में ही युद्ध के लिए निकल पड़ेंगे, युद्ध की तैयारी करने लगे। (द्रोणपर्व, ७५/६-८)

इतना ही नहीं, जब संग्राम-भूमि से श्रीकृष्णार्जुन शिविर की ओर आ रहे थे तब अभिमन्युवध से प्रसन्न घमण्ड में भरे धृतराष्ट्र के पुत्रों का उन्होंने

सिंहनाद सुना। अभिमन्युवध का ज्ञान न होने पर भी पार्थ का हृदय धड़क-धड़क कर विधाता की ओर से उसे किसी अनर्थ की सूचना दे रहा था। इधर युयुत्सु को कौरववीरों की भर्त्सना करते श्रीकृष्ण भगवान् ने सुना। परन्तु उन्होंने अर्जुन को उस समय कुछ नहीं बताया। केवल इतना कहा कि तुम्हारे अपशकुन का फल कोई और ही अमंगल हो सकता है, भाइयों की ओर से निश्चिन्त रहो।

बाद में जब अर्जुन ने शिविर में अभिमन्यु को नहीं देखा और सभी भाइयों को अत्यन्त व्यथित देखा तथा श्रीकृष्ण ने भी युयुत्सु द्वारा कौरवों को उपालम्भ (उलाहना) का समाचार कह सुनाया, तब अर्जुन ने कहा —

किमर्थमेतन्नाख्यातं त्वया कृष्ण रणे मम।।
अधाक्षं तानहं क्रूरांस्तदा सर्वान् महारथान्।

(द्रोण., ७२/६४,६४-१/२)

"श्रीकृष्ण ! आपने रणक्षेत्र में ही यह बात मुझसे क्यों नहीं बता दी? मैं उसी समय उन समस्त क्रूर महारथियों को जलाकर भस्म कर डालता।"

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि जो अर्जुन युद्धभूमि में अभिमन्युवध का समाचार सुन लेते तो शत्रुओं को उसी समय युद्ध में भस्म कर देते तथा जिनके कष्ट और क्रोध का स्मरण कर कौरव रात्रियुद्ध की सम्भावना से सन्त्रस्त एवं सतर्क हो गये थे, ऐसी स्थिति में सत्यवादी अर्जुन क्या एक दिन युद्ध का विश्राम देकर निज प्रतिज्ञा भंग कर सकते थे, कदापि नहीं। अत: जिसे प्रो. कवीश्वर युद्धविराम या अवकाश का स्पष्ट उल्लेख बताते हैं, वह तो युद्ध का ज्वलन्त सन्देश है।

यहाँ ध्यान देने की आवश्यकता है कि 'तां निशां दुःखशोकार्तौ ....' (द्रोण., ७७/१) इस वचन से उस रात्रि का संक्षिप्त परिचय मिलता है। आगे सायंकाल से रात्रिभर की घटनाओं का क्रमिक वर्णन है। 'निंद्रा नैवोपलेभाते वासुदेवधनञ्जयौ।' यह पंक्ति यद्यपि यह सिद्ध करती है कि रात्रि भर श्रीकृष्ण और अर्जुन सोये नहीं,आगे दोनों के शयन का वर्णन मिलता है, अत: पहले श्लोक को ज्यों-का-त्यों प्रमाण मान कर आगे की घटना दूसरे दिन और दूसरी रात की है, ऐसा श्रीकवीश्वर सिद्ध करना चाहते

हैं। परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है।यह तो महाकवि की कालसम्बन्धी कूट-शैली है। अतः यहाँ श्रीकृष्णार्जुन के रात्रि भर न सोने में — 'देवी सुभद्रा को सान्त्वना प्रदान करने तक' यह संकोचक प्रमाण है। अर्थात् शोकसन्तप्त होने के कारण श्रीकृष्णार्जुन रात्रि में अधिक समय तक जागे ही रहे। अर्जुन की प्रार्थना पर (द्रोण., ७७/११) जब श्रीभगवान् बहन सुभद्रा को सान्त्वना दे चुके, तब दोनों वीर सोये।

कवीश्वर का इस सन्दर्भ में यह भी कहना है कि अभिमन्युवध के बाद जयद्रथवध की प्रतिज्ञावाली रात्रि के पश्चात् अवकाश दिन में सूर्योदय के समय जब श्रीकृष्णार्जुन सन्तप्त थे, तब अनेकों अपशकुन हो रहे थे; जिसका विवेचन द्रोणपर्व (७७/२-८) में विस्तारपूर्वक है।

इस पर हमारा यह कहना है कि ग्रन्थकार ने समयनिर्धारण के लिए दो संकेत प्रदान किये हैं। 'स कबन्धस्तथाऽऽदित्ये परिधिः समदृश्यत' (द्रोण., ७७/३) इस प्रथम निर्देश से यह निर्णय होता है कि दिन का समय था, रात्रि का नहीं। 'नरनारायणौ क्रुद्धौ ज्ञात्वा देवाः सवासवाः।' (द्रोण., ७७/२) 'नर नारायण (अर्जुन और श्रीकृष्ण) के क्रुद्ध होने ......' इस द्वितीय सन्देश से यह निश्चय होता है कि अभिमन्युवध का समाचार सुनकर भयंकर प्रतिज्ञा कर श्रीकृष्णार्जुन द्वारा क्रुद्ध होकर शंख बजाने के समय सायंकाल था, उसी समय सूर्य कबन्ध (मस्तकहीन शरीराकृति) से घिर गया, त्रिलोकी सन्त्रस्त हुई। वाहन मल-मूत्र करने और रोने लगे। समुद्र क्षुब्ध हो गये। पृथिवी काँपने लगी। भूत-प्रेतादि नाचने लगे।

अथवा जिस समय श्रीकृष्णार्जुन विजयसूचक शुभ शकुनों को अनुभव करते हुए युद्धभूमि में पहुँचे, सूर्योदय का समय उपस्थित हो रहा था। दोनों वीरों ने क्रुद्ध होकर शंख बजाये। उस समय भी अपशकुन प्रकट होने लगे। आकाश से भयंकर गर्जना के साथ सहस्त्रों जलती हुई उल्काएँ गिरने लगीं और सारी पृथिवी काँपने लगी। 'श्रुत्वा महाबलस्योग्रां प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः' (अर्जुन की प्रतिज्ञा सुन कर) यह लक्षण भी दोनों समय घटित होते हैं। अर्जुन को अत्यन्त प्रसन्न होकर युद्धभूमि में प्रवेश करते देखकर भी सभी उनकी प्रतिज्ञा को जान सकते है और रात्रि-युद्ध की आशंका से युद्ध के

लिए उद्यत होते समय गुप्तचरों से भी पार्थ की प्रतिज्ञा सुनकर सभी त्रस्त हो सकते हैं। युद्धकाल उपस्थित होने पर अपशकुनों का स्पष्ट वर्णन द्रोण., ८४/२५; ८८/४-६ में है।

'सायाह्ने', 'ततो निशाया दिवसस्य चाशिवः शिवारुतैः सन्धिरवर्ततादभुतः।, कुशेशयापीऽनिभे दिवाकरे विलम्बमानेऽस्तमुपेत्य पर्वताम्, 'प्रियां तनुं भानुरुपैति पावकम्' (द्रोण., ५०/१-४) 'ततः सन्ध्यामुपास्यैव वीरौ वीरावसादने' (द्रोण., ७२/८) आदि उक्तियों से अर्जुन की प्रतिज्ञा का समय 'सायाह्न सिद्ध होता है। प्रातः काल कदापि नहीं।

परन्तु 'तां निशां दुःख शोकार्तौ' (द्रोण., ७७/१) से प्रतिज्ञा वाली रात्रि का पहले संक्षिप्त परिचय देकर 'नरनारायणौ क्रुद्धौ ज्ञात्वा देवाः सवासवाः। श्रुत्वा महाबलस्योग्रां प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः' (द्रोण., ७०/२-८) तक युद्धभूमि में श्रीकृष्णार्जुन के प्रयाण का निर्देश कर महाकविने अभिमन्युवधवाली रात्रि का विस्तारपूर्वक वर्णन करने की इच्छा से आगे का प्रसंग उपस्थापित करते हुए 'अथ कृष्णं ...... ' कहा है, ऐसा मानना ही समीचीन है।

श्रीभीष्माचार्य के नेतृत्व में रात्रिविश्राम के बाद युद्ध का सर्वत्र उल्लेख भी अवकाशयुक्त युद्ध की कल्पना के सर्वथा विरुद्ध ही है—

ततोऽवहारः सैन्यानां तव तेषां च भारत।
अस्तं गच्छति सूर्येऽभूत् संध्याकाले च वर्तति।।

(भीष्म., ५४/४३)

'भारत ! इसप्रकार सूर्य के अस्ताचल को चले जाने पर सन्ध्या के समय आपकी और पाण्डवों की सेनाएँ लौट आयीं।।'

प्रभातायां च शर्वर्यां भीष्मः शान्तनवस्तदा।
अनीकान्यनुसंयाने व्यादिदेशाथ भारत।।

(भीष्म., ५६/१)

'भारत ! जब रात बीती और प्रभात हुआ, तब शान्तनुनन्दन भीष्म ने अपनी सेनाओं को युद्धभूमि में चलने का आदेश दिया।।'

इति ब्रुवन्तः शिबिराणि जग्मुः सर्वे गणा भारत ये त्वदीयाः।।
उल्कासहस्त्रैश्च सुसम्प्रदीप्तैर्विभ्राजमानैश्च यथा प्रदीपैः।
किरीटिवित्रासितसर्वयोधा चक्रे निवेशं ध्वजिनी कुरूणाम्।।

(भीष्म., ५९/१३८-१३९)

'भारत ! उपर्युक्त बातें कहते हुए आपके समस्त सैनिक सहस्रों जलती हुई मशालें तथा प्रकाशमान दीपों के उजाले में अपने-अपने शिविर में गये। कौरवसेना के सम्पूर्ण सैनिकों पर अर्जुन का त्रास छा रहा था। इसी अवस्था में उस सेना ने रात्रिविश्राम किया।।'

व्युष्टां दिशां भारत भारतानामनीकिनीनां प्रमुखे महात्मा।
ययौ सपत्नान् प्रति जातकोपो वृतः समग्रेण बलेन भीष्मः।।

(भीष्म., ६०/१)

'भारत ! जब रात बीती और प्रभात हुआ, तब भरतवंशियों की सेना के अग्रभाग में स्थित हुए महामना भीष्म समग्र सेना से घिरकर शत्रुओं से युद्ध करने के लिए चले। उस समय उनके मन में शत्रुओं के प्रति बड़ा क्रोध था।।'

चतुर्थ दिन के युद्ध में भीष्माचार्य के निम्नलिखित वचनसे उनके नेतृत्व में अवकाशयुक्त युद्ध का स्पष्ट ही खण्डन होता है —

तन्न मे रोचते युद्धं पाण्डवैर्जितकाशिभिः।
घुष्यतामवहारोऽद्य श्वो योत्स्यामः परैः सह।।

(भीष्म., ६४/७७)

'इसलिए विजय से सुशोभित होने वाले पाण्डवों के साथ इस समय युद्ध करना मुझे पसन्द नहीं आता। आज युद्ध का विराम घोषित कर दिया जाय। कल सबेरे हमलोग शत्रुओं के साथ युद्ध करेंगे।।'

व्युषितायां च शर्वर्यामुदिते च दिवाकरे।
उभे सेने महाराज युद्धायैव समीयतुः।।

(भीष्म., ६९/१)

'महाराज ! वह रात बीतने पर जब सूर्योदय हुआ, तब दोनों ओर की सेनाएँ आमने-सामने आकर युद्ध के लिए डट गयीं।।'

कवीश्वर के मत में मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशी को आठवें दिन का युद्ध था। कौरव युद्धभूमि में पूर्वदिशा की ओर मुख करके खड़े होते थे। इसलिए रात्रि के प्रारम्भ में स्वच्छ चन्द्रप्रकाश सामने से उनके ऊपर आ रहा था और इसलिए उनकी स्वयं की छाया पीछे अनुचरों पर गिरकर अन्धेरा हो गया, वे ठीक प्रकार से नहीं दिखने लगे और छाया भी एक-दो की नहीं, अपितु अगणित हाथी, रथादि से युक्त विशाल सेना की।

परन्तु उक्त कल्पना सर्वथा निराधार है। इस न्याय से तो शुक्ल-पक्ष की अधिक प्रकाश वाली तिथियों में युद्ध सर्वथा ही असम्भव मानना चाहिए। आठवें दिन के अवहार (युद्धविराम) का विवरण महाभारत में इस प्रकार है —

रात्रिः समभवत् तत्र नापश्याम ततोऽनुगान्।
ततोऽवहारं सैन्यानां प्रचक्रुः कुरुपाण्डवाः।।
रजनीमुखे सुरौद्रे तु वर्तमाने महाभये।
अवहारं ततः कृत्वा सहिताः कुरुपाण्डवाः।
न्यविशन्त यथाकालं गत्वा स्वशिविरं तदा।।

(भीष्म., ९६/७९-८०)

रात हो गयी थी। हमें अपने सैनिक नहीं दिखाई दे रहे थे,तब कौरव एवं पाण्डवों ने अपनी-अपनी सेना को लौटने का आदेश दे दिया।।'

'फिर उस महाभयानक तथा अत्यन्त रौद्ररूप वाले प्रदोषकाल में कौरव तथा पाण्डव एक साथ अपनी सेनाओं को लौटाकर यथासमय शिविर में जा पहुँचे और विश्राम करने लगे।।'

उक्त उद्धरणों से सिद्ध है कि आठवें दिन का युद्ध कृष्णपक्ष में हुआ।

इतना ही नहीं, महाभारत के अनुसार पूर्वदिशा की ओर पाण्डवों का मुख सिद्ध होता है न कि कौरवों का—

पश्चिन्मुखाः कुरवो धार्तराष्ट्राः
स्थिताः पार्थाः प्राङ्मुखा योत्स्यमानाः।

(भीष्म., २०/४-१/२)

'आपके पुत्र — कौरवों का मुख पश्चिम दिशा की ओर था और कुन्ती के पुत्र उनसे युद्ध करने के लिए पूर्वाभिमुख खड़े थे।।'

महारथौघविपुलः समुद्र इव घोषवान्।
भीष्मेण धार्तराष्ट्राणां व्यूहः प्रत्यङ्मुखो युधि।।

(भीष्म., २०/१९)

'भीष्म द्वारा रचित कौरवसेना का वह व्यूह महारथियों के समुदाय से सम्पन्न हो, समुद्र के समान गर्जना करता था। युद्ध में उसका मुख पश्चिम की ओर था।।'

अभियाय तु दुर्धर्षा धार्तराष्ट्रस्य वाहिनीम्।
प्राङ्मुखाः पश्चिमे भागे न्यविंशन्त ससैनिकाः।।

(भीष्म., १/५)

'पाण्डवों के योधा लोग अपने-अपने सैनिकों के सहित धार्तराष्ट्रों की दुर्धर्ष सेना के सम्मुख जाकर पश्चिमभाग में पूर्वाभिमुख होकर ठहर गये थे।'

ते समेत्य यथान्यायं धार्तराष्ट्रा महाबलाः।
कुरुक्षेत्रस्य पश्चार्धे व्यपातिष्ठन्त दंशिताः।।

(उद्योग., १९५/११)

'धृतराष्ट्र के वे महाबली पुत्र रणक्षेत्र में जाकर सुसज्जित हो कुरुक्षेत्र के पश्चिमभाग में यथोचितरूप से खड़े हुए।'

कवीश्वरजी का यह भी कहना गलत है कि शल्याभिषेक के दिन अवकाश अवश्य था। यद्यपि हिमालयान पर ही अभिषेक का उल्लेख है, तथापि लगभग सोलह मील की दूरी पर स्थित धर्मराज ने बिना दूत के अभिषेककालीन शब्द को कैसे सुना ? साथ ही जब सायंकाल मरे हुए कर्ण को कौरव-पाण्डव दीपों के प्रकाश में देख रहे थे, तब उसके कई घण्टे बाद हिमालयान

पर होने वाले शब्द सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने धर्मराज को शल्यवध के लिए सायंकाल प्रेरित कैसे किया? अतः

एतावदुक्त्वा वचनं केशवः परवीरहा।
जगाम शिविरं सायं पूज्यमानोऽथ पाण्डवैः।।

(शल्य., ७/४२)

'शत्रुवीरों का संहार करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण यह बात कह कर सायंकाल पाण्डवों से सम्मानित हो अपने शिविर में चले गये।'

इन श्लोक में प्रयुक्त 'सायं' का अर्थ कर्णवध के दूसरे दिन सायंकाल ही सम्भव है। अतः कर्णवध के बाद शल्याभिषेक के उपलक्ष्य में एक दिन का अवकाश मानना चाहिए। क्योंकि इसका यह उत्तर स्पष्ट है कि जिस तरह दुर्योधनवध में दुर्योधन के भागने, संजय का उससे मिलने, उसका द्वैपायन-सरोवर में प्रवेश करने, संजय-प्रेरित कृप, अश्वत्थामा और कृतवर्मा का उससे मिलने, पुनः तीनों का शिविर में लौट आने, फिर युयुत्सु का हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान करने, दुर्योधन द्वारा अश्वत्थामा का युद्धार्थ अभिषिक्त होने, पुनः कृतवर्मा और कृपाचार्यसहित अश्वत्थामा का घनघोर जङ्गल में प्रवेश करने तक महाभारत में सायंकाल का ही वर्णन है। अतः मध्याह्नोत्तर सूर्यास्त के कुछ समय बाद तक दोनों ही स्थलों में सायंकाल शब्द का प्रयोग समझना चाहिए। न कि एक दिन युद्धविराम के बाद रात्रिकाल।

अब रही बात धर्मराज द्वारा बिना गुप्तचर के सुदूर होने वाले शल्याभिषेक के घोष को सुनने की बात।

इसका भी समाधान यह है कि महाभारत-युद्ध में दिव्यदर्शिता का पर्याप्त उल्लेख है। भीष्मपतन के दिन प्रातः ही 'अवाक् शिराः चन्द्र' (दोनों कोनों के सिरे नीचे करके चन्द्र) को तथा अन्य उत्पातों को देखकर द्रोणाचार्य ने अश्वत्थामा को भीष्म की रक्षा के लिए विशेष रूप से उद्बोधित करते हुए कहा — 'आज भीष्मपतन का योग उपस्थित हो रहा है।'

इसी तरह श्रीव्यासजी द्वारा की गयी भविष्यवाणी का रहस्योद्घाटन पहले ही किया जा चुका है। कर्णवध के दिन पहले ही भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सावधान करते हुए कहा — आज तुम्हारे हाथों कर्ण का वध होना

है। इसी प्रकार दुर्योधन के धराशायी होने पर धर्मराज प्रेरित श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर में देवी गान्धारी और राजा धृतराष्ट्र को सान्त्वना देने के अनन्तर सहसा कुरुक्षेत्र के लिए प्रस्थान करना चाहा और उन्होंने श्रीवेदव्यास जी के सम्मुख कहा — 'आज अश्वत्थामा पाण्डवों का नाश करना चाहता है, अतः उनकी रक्षा के लिए मुझे अति शीघ्र चलना है।'

अस्तु ! क्योंकि विधाता के विधान में धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा ही शल्यवध होना था, अत: दिव्यदर्शी धर्मराज ने भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेरणा से हिमालययान पर हो रहे शल्याभिषेक का शब्द सुना।

स्वयं युधिष्ठिर ने अनुस्मृति-विद्या के प्रसङ्ग में उनकी दिव्यदर्शिता का रहस्योद्घाटन किया है—

देवर्षिर्लोमशो दृष्टस्ततः प्राप्तोऽस्म्यनुस्मृतिम्।
दिव्यं चक्षुरपि प्राप्तम् ज्ञानयोगेन वै पुरा।।

(स्त्रीपर्व, २६/२०)

'तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में देवर्षि लोमश का दर्शन हुआ था। उन्हीं से मैंने यह अनुस्मृति विद्या प्राप्त की थी। इसके अतिरिक्त पूर्वकाल में ज्ञानयोग के प्रभाव से मुझे दिव्यदृष्टि भी प्राप्त हो गयी थी।'

जब द्रोणाचार्य दिव्यवपु ब्रह्मलोक के लिए उत्क्रमण कर रहे थे, तब दिव्यदर्शी धर्मराज ने भी उनका दर्शन किया —

ब्रह्मलोकगते द्रोणे धृष्टद्युम्ने च मोहिते।
वयमेव तदाद्राक्ष्म पञ्च मानुषयोनयः।।
योगयुक्तं महात्मानं गच्छन्तं परमां गतिम्।
अहं धनंजयः पार्थः कृपः शारद्वतस्तथा।।
वासुदेवश्च वार्ष्णेयो धर्मपुत्रश्च पाण्डवः।
अन्ये तु सर्वे नापश्यन् भारद्वाजस्य धीमतः।
महिमानं महाराज योगयुक्तस्य गच्छतः।।

(द्रोण., १९२/५५-१/२-५८-१/२)

'अपमान से धृष्टद्युम्न के मोहित हो जाने पर द्रोणाचार्य के ब्रह्मलोक जाते समय मैं (संजय), कुन्तीपुत्र अर्जुन, शरद्वान् के पुत्र कृपाचार्य, वृष्णिवंशी भगवान् श्रीकृष्ण तथा धर्मपुत्र पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर — इन पाँच मनुष्यों ने ही योगयुक्त महात्मा द्रोण को परमधाम की ओर जाते देखा था। अन्य सब लोगों ने योगयुक्त हो ऊर्ध्वगति को जाते हुए बुद्धिमान् द्रोणाचार्य की महिमा का साक्षात्कार नहीं किया।

इस तरह कवीश्वरजी ने जो अवकाश की सिद्धि में प्रमाण प्रस्तुत किये है, वे सब अवकाश न होने में वज्रहेतु है। पन्द्रहवें दिन के बाद एक-एक दिन अवकाश और शल्यवध के दूसरे दिन दुर्योधनवध की बात कौन कहे, केवल एक अवकाश मानने पर भी — 'पञ्चमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति' (द्रोणपर्व, १८३/६५), यह व्यासवचन सर्वथा खण्डित होता है।

इतना ही नहीं, चित्रा नक्षत्र में मार्गशीर्ष की अमावास्या मानने के कारण आद्योपान्त तिथि और नक्षत्र का योग असन्तुलित होता है। पुष्य में मार्गशीर्ष कृष्ण सप्तमी मानने के कारण कार्तिकी पूर्णिमा अश्विनी में सिद्ध होती है। इसी तरह कृत्तिका में मार्गशीर्ष की पूर्णिमा मानना भी अनुचित है।

इतना ही नहीं, एक ओर तो मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष में दो तिथियों का क्षय माना है, दूसरी ओर एक नक्षत्र की वृद्धि भी मानी है। यह सब अनर्थ चित्रा को ऐन्द्र नक्षत्र मानने से हुआ है।

कवीश्वर ने भीष्म-निर्वाण-सम्बन्धी दो वचनों की सार्थकता पर कोई ध्यान ही नहीं दिया है। इनके मत में भीष्माचार्य के पास श्रीकृष्णसहित पाण्डव माघ शुक्ला नवमी को पहुँचते हैं। ऐसा मानने पर 'पञ्चाशतं षट्' का अर्थ — नवमी सहित पूर्णिमा तक सात दिन अथवा दशमी से पूर्णिमा तक छह दिन सिद्ध होता है। ये दशमी से पूर्णिमा तक उपदेश मानते हैं। परन्तु ऐसी स्थिति में तो 'उषित्वा शर्वरीः श्रीमान् पञ्चाशन्नगरोत्तमे' के अनुसार उपदेश-श्रवण के पश्चात् पाण्डवों के हस्तिनापुर में निवास-सम्बन्धी वचन ही निरर्थक सिद्ध हो जाता है। यहाँ यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि श्रीभगवान् के 'सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति' (उद्योग., १४९/१८) इस वचन को अक्षरशः सत्य सिद्ध करने के लिए ही श्रीकवीश्वर ने अवकाशयुक्त सिद्ध

करने की असम्भव कल्पनाएँ करने का साहस किया है, उन्हीं भगवान् के 'पञ्चाशतं षट् च' (शान्ति., ५१/१४) इस वचन पर मौन धारण कर लिया है।

साथ ही कवीश्वर पूर्णिमा की उत्तररात्रि में तीन मुहूर्त रात्रिशेष रहने पर भीष्म जी का देहत्याग मानते हैं। परन्तु ऐसा मानने पर 'त्रिभागशेषः' का प्रसंगानुसार प्राप्त महत्त्व ही लुप्त होता है।

डाक्टर काणे एवं दफ्तरी आदि ने मार्गशीर्ष अमावास्या से पौषकृष्ण द्वितीया तक लगातार युद्ध माना है। परन्तु ऐसा मानने पर भी श्रवण को युद्धान्त सम्भव नहीं। साथ ही आठवें,नवें, ग्यारहवें दिन के युद्ध में शुक्ल सप्तमी, अष्टमी और दशमी सिद्ध होती है। परन्तु महाभारत में इन दिनों सायंकाल अन्धकार का वर्णन है। चौदहवें दिन शुक्ल त्रयोदशी होने के कारण उत्तररात्रि में चन्द्रोदय वाला वचन भी निष्फल जाता है।

फिर भी इन विचारकों के प्रयास की सराहना है। किन्तु हैं सारे-के-सारे विचार तथ्यहीन ही।

उपसंहार

महाभारत में समग्र सृष्टि का रस और रहस्य सन्निहित है। इसमें अनेक प्राचीनतम इतिहास भी सन्निहित हैं। साथ ही रचयिता — महर्षि श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने निज बन्धु-बान्धवों और सगे-सम्बन्धियों (कौरव-पाण्डवों) का मार्मिक इतिहास भी इसमें ग्रथित किया है। अभिप्राय यह कि महाभारत में वर्णित कौरव-पाण्डव का इतिहास एक दृष्टि से श्रीवेदव्यास के निज परिवार का ही इतिहास समझना चाहिए। अतः इस पारिवारिक इतिहास को इतिहास न समझ कर आधुनिक उपन्यासों की तरह काल्पनिक मानना सर्वथा अनुचित है। ऐसा मानने पर तो लेखक के जन्म-कर्म और उससे सम्बद्ध चरित्र सभी मिथ्या सिद्ध होते हैं। इस प्रकार की अनर्गल कल्पना सर्वथा अशोभनीय है। महाभारत को प्रमाण मानकर ही इस पर प्रामाणिक विचार कर्त्तव्य है।

।।इति शम्।।

श्री करपात्री धाम

श्री केदार घाट, वाराणसी